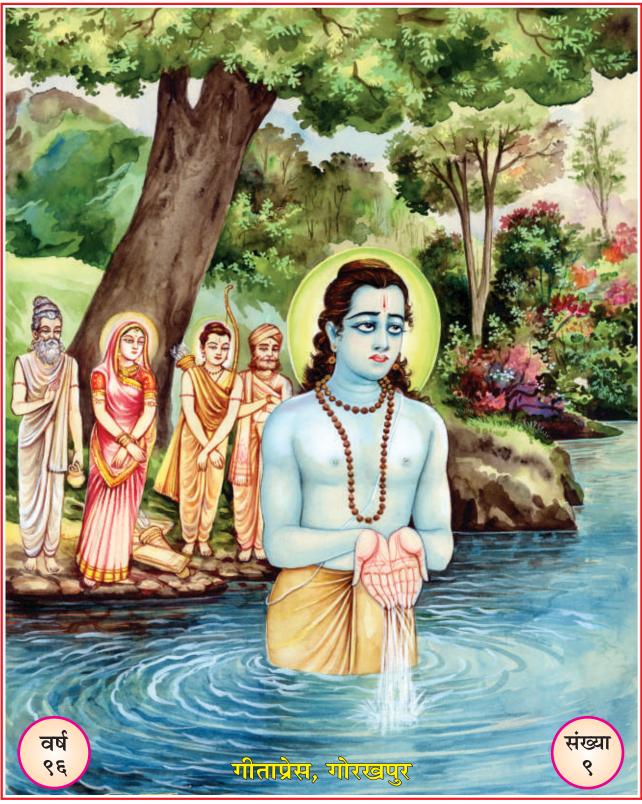
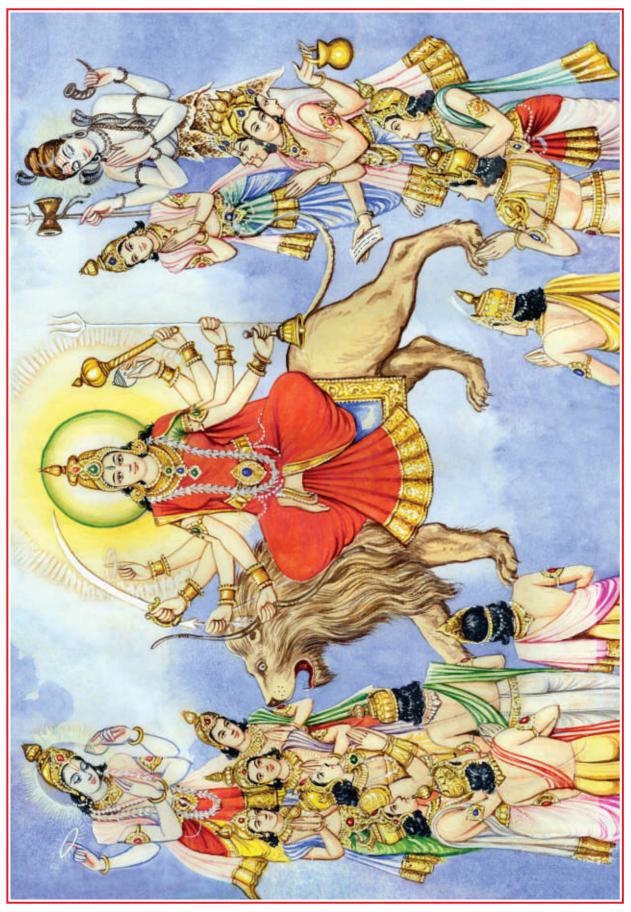
कल्याण









ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन। जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

वर्ष १६

गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, सितम्बर २०२२ ई०

पूर्ण संख्या ११५०

संख्या

देवताओंद्वारा सिंहवाहिनी दुर्गाकी स्तुति

नमो देवि विश्वेश्विर प्राणनाथे सदानन्दरूपे सुरानन्ददे ते। नमो दानवान्तप्रदे मानवानामनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे॥ न ते नामसंख्यां न ते रूपमीदृक्तथा कोऽपि वेदादिदेवस्वरूपे। त्वमेवासि सर्वेषु शक्तिस्वरूपा प्रजासृष्टिसंहारकाले सदैव॥ न वा ते गुणानामियत्तां स्वरूपं वयं देवि जानीमहे विश्ववन्द्ये।

कृपापात्रमित्येव मत्वा तथास्मान्भयेभ्यः सदा पाहि पातुं समर्थे॥ हे विश्वेश्वरि! हे प्राणोंकी स्वामिनि! सदा आनन्दरूपमें रहनेवाली तथा देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाली हे

देवि! आपको नमस्कार है। दानवोंका अन्त करनेवाली, मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाली तथा भक्तिके द्वारा अपने रूपका दर्शन देनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। हे आदिदेवस्वरूपिणि! आपके नामोंकी निश्चित संख्या तथा आपके इस रूपको कोई भी नहीं जान सकता। सबमें आप ही विराजमान हैं। जीवोंके सृजन और संहारकालमें शक्तिस्वरूपसे

सदा आप ही कार्य करती हैं। हे देवि! हे विश्ववन्द्ये! हमलोग न आपके गुणोंकी सीमा जानते हैं और न आपका स्वरूप ही जानते हैं। अत: रक्षा करनेमें समर्थ हे देवि! हमें केवल अपना कृपापात्र मानकर आप भयोंसे निरन्तर हमारी रक्षा करती रहें। [श्रीमहेवीभागवत]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ (संस्करण १,८०,०००) कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, अगस्त २०२२ ई०, वर्ष ९६ — अंक ९ विषय-सूची पृष्ठ-संख्या पृष्ठ-संख्या विषय विषय १ - देवताओंद्वारा सिंहवाहिनी दुर्गाकी स्तुति ३ १५- पर्यावरण-प्रदूषण—समस्या और समाधान (श्रीमिथिलेश कुमारजी शुक्ल)२८ २- सम्पादकीय......५ १६- भगवान् श्रीकृष्णका उद्भवको ज्ञानोपदेश ३ - कल्याण ६ ४- व्रज-विभित७ (श्रीअर्जुनकुमारजी बन्सल) ३० ५- श्रीरामका पिताको जलदान १७- परम ब्रह्म नमस्काराष्टक (श्रीशरदजी अग्रवाल)....... ३२ [आवरणचित्र-परिचय]..... ६ १८- नवधा भक्ति (श्रीलालजी मिश्र) ३३ ६ - मरणासन्नको भगवन्नाम सुनाना अति महत्त्वपूर्ण १९- शिवपूजनकी महनीय धरती मगध **[तीर्थ-दर्शन**] (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)९ (डॉ॰ राकेश कुमार सिन्हा 'रवि', पी-एच॰डी॰) ३७ २०- हिमाचलकी साध्वी सत्यादेवी [सन्त-चरित] ७- उत्तेजनाके क्षणोंमें [हमारे आन्तरिक शत्रु] (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)१० (प्रो॰ पूजा वशिष्टजी) ३९ २१- बडभागी हनुमानुजी (साकेतवासी श्रद्धेय स्वामी ८- तीन प्रकारके प्रारब्ध (नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) १४ श्रीराजेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराज 'रामायणी')४१ २२- महाराज विक्रमादित्यकी गोभक्ति **। गो-चिन्तन ।**४२ ९- परलोक-विचार (तत्त्वदर्शी महात्मा श्रीतैलंग स्वामीजीका उपदेश)......१५ २३- विद्या और शिक्षा (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)४३ १०- भगवानुसे सम्बन्ध (अपनापन) (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)...१९ २४- स्भाषित-त्रिवेणी४४ ११- 'कस न होइ मगु मंगलदाता' (श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा) २० २५- व्रतोत्सव-पर्व [आश्वनमासके व्रत-पर्व].....४५ १२- मृत्युका दर्शन (डॉ० श्री गो० दा० फेगडे)......२२ २६ - कृपानुभूति४६ २७- पढ़ो, समझो और करो४७ १३- 'रामहि केवल प्रेमपिआरा' (श्रीसुरेशजी शर्मा)२५ १४- बडी दुस्तर है प्रभुकी माया (श्रीताराचन्दजी आहुजा) २६ २८- मनन करने योग्य.....५० चित्र-सूची १- श्रीरामका पिताको जलदान आवरण-पृष्ठ

५- श्रीरामका श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन कराना(🦙 एकवर्षीय शुल्क जय पावक रवि चन्द्र जयित जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ ₹ 500 जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन जय जय॥ सभी अंक रजिस्ट्रीसे

विराट

२- देवताओंद्वारा सिंहवाहिनी दुर्गाकी स्तुति("

४- महाराज विक्रमादित्यकी गोभक्ति(

एकवर्षीय शुल्क

₹300

वार्षिक US\$ 50 (₹4,000) **Us Cheque Collection** विदेशमें Air Mail पंचवर्षीय US\$ 250 (₹20,000) Charges 6 \$ Extra ,मासिक अंक साधारण डाकसे,

जय जगत्पते। गौरीपति

३- श्रीरामके चरणोंमें भरत (इकरंगा).................... २०

) मुख-पृष्ठ

रमापते ॥

जय

पंचवर्षीय शल्क

₹2500

सभी अंक रजिस्ट्रीसे

पंचवर्षीय शुल्क

₹1500

मासिक अंक साधारण डाकसे,

संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक—प्रेमप्रकाश लक्कड

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website: gitapress.org e-mail: kalyan@gitapress.org £ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — 273005, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता हेत् gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पढें। संख्या ९] सम्पादकीय हरे हरे हरे हरे । हरे हरे हरे हरे। राम राम राम राम राम राम राम राम हरे हरे॥ हरे हरे॥ हरे हरे हरे कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे हरे हरे हरे हरे हरे। राम राम राम राम राम राम राम राम हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे ॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे। हरे हरे हरे हरे हरे। राम राम राम राम राम राम राम राम हरे हरे ॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण हरे राम हरे राम हरे हरे। हरे राम हरे राम हरे हरे । राम राम राम राम हरे हरे हरे ॥ हरे ॥ हरे हरे हरे हरे कृष्ण कष्ण कष्ण कष्ण कष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे हरे । राम राम ॥ श्रीहरि:॥ हरे हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण श्रीमद्भगवद्गीताका प्रसिद्ध श्लोक है— हरे हरे हरे हरे। राम राम हरे हरे हरे ॥ हरे कृष्ण कृष्ण फलेषु कर्मण्येवाधिकारस्ते मा कदाचन। हरे हरे हरे हरे । राम राम हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥ कृष्ण हरे मा हरे हरे हरे । राम राम हरे इस श्लोकके पहले दो चरणोंमें सिद्धान्तकी बात की हरे हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे हरे । राम राम अगले दो चरणोंमें आदेश है। मात्र कर्म करनेमें हरे हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण तुम्हारा अधिकार है, उसके सफल या विफल होनेमें नहीं— हरे हरे। राम हरे राम हरे हरे हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण यह तो सिद्धान्तकी बात हुई। हरे हरे हरे हरे। राम राम हरे हरे हरे हरे ॥ भगवान्के आदेशरूपसे करनेकी दो बातें हैं-१. कर्मका कृष्ण कृष्ण हरे हरे राम राम हरे हरे। आते समय स्वयंको उसकी सफलता हरे हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे हरे। राम राम विफलताका हेतु न मानो। समझो कि जो हो रहा है, प्रारब्ध हरे हरे ॥ कृष्ण हरे कृष्ण हरे या भगविदच्छा है और २. ऐसा न हो कि इस कारण कर्म हरे हरे हरे। राम राम हरे हरे हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण करनेके प्रति तुम्हारे उत्साहमें कोई कमी हो जाय। हरे हरे हरे हरे। राम राम हरे हरे हरे ॥ हरे कृष्ण कर्मयोगका यह रहस्य भगवत्कृपासे हम सबके जीवनमें कृष्ण हरे हरे हरे राम राम हरे। फलीभूत हो। हरे हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे हरे। राम सम्पादक राम हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे। राम हरे राम राम राम हरे हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे हरे हरे हरे ॥ हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे हरे हरे। हरे हरे हरे हरे । राम राम राम राम राम राम राम राम हरे कृष्ण हरे ॥ हरे हरे हरे हरे ॥ कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे हरे। हरे हरे हरे। राम राम राम राम राम हरे राम राम राम हरे हरे हरे हरे ॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे हरे । हरे हरे हरे हरे। राम राम राम राम राम राम राम राम हरे हरे हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे। हरे हरे। हरे हरे राम हरे राम राम राम राम राम राम राम हरे॥ हरे हरे हरे कृष्ण हरे हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण कष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे हरे। हरे हरे हरे हरे । राम राम राम राम राम राम राम राम हरे हरे हरे हरे ॥ हरे हरे हरे ॥ कृष्ण कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण

िभाग ९६ कल्याण याद रखो — जबतक किसी वस्तुका मनमें महत्त्व नहीं। सत्यकी कल्याणमयी सुन्दर प्रतिष्ठा मनमें ही हुआ है, जबतक उसकी ओर देखकर मन ललचाता है, करती है। अतएव तुम यदि जीवनमें निष्कामभाव लाना जबतक 'किसीके पास वह वस्तु है' इसलिये उसे चाहते हो तो काम्य-वस्तुओंमें अनित्यता, मलिनता, सौभाग्यवान् तथा ईश्वरका कृपापात्र समझा जाता है, दु:खरूपता और विनाशिताको देखो। भगवानुके बिना जबतक उस वस्तुका अपने पास न होना अभाग्यका जितने भी भोग हैं-सब दु:ख हैं, भयानक दु:खोंकी चिह्न माना जाता है, जबतक उसकी आवश्यकताका उत्पत्तिके स्थान हैं—यह अनुभव करो। फिर उनकी ओर मनका प्रवाह अपने-आप ही रुक जायगा। अनुभव होता रहता है और उसके प्राप्त होनेपर अभाव तथा कष्टका नाश एवं सुख-सुविधाकी प्राप्ति होगी, याद रखो-तुम्हारे मनका जो यह विश्वास है, ऐसी धारणा रहती है, तबतक मनुष्य उसकी कामनासे तुम्हारी बुद्धिका जो यह निश्चय है कि भोगोंमें सुख कभी मुक्त नहीं हो सकता। उसमें निष्कामभाव नहीं आ है—चाहे यह विश्वास और यह निश्चय वाणीसे फूट न निकलता हो, पर तुम्हें भोगोंमें लगाये बिना नहीं रह सकता। सकता। तुम हजार निष्काम-शब्दकी रटना करो, निष्कामके याद रखों—'निष्काम' शब्दके रटनेसे तुम निष्काम नहीं हो सकते। निष्कामभाव मनमें आता है और वह महत्त्वका गुणगान करो। तुम सुखके लिये भोगोंका होना अनिवार्य समझोगे। तुम्हारा अन्तर्हृदय भोगोंके लिये

बनोगे?

रहेगी। कामनाका त्यार्ग मनसंपहुर्जा करता है, कामिस इस प्रकारकी मनावृत्ति रहेगी, तेबतक कामनाक किन्त

तभी आयेगा, जब तुम जिस वस्तुकी कामना करते हो, उस वस्तुमें तुम्हारी दु:ख-दोष-बुद्धि, मलिन-बुद्धि, 'वह तुम्हारे लिये हानिकारक है, तुम्हारे यथार्थ सुख-सुविधामें बाधक है'-ऐसी बुद्धि और उसमें असत्-बुद्धि वस्तुत: हो जायगी। याद रखो-मलको उठाकर कोई शरीरपर लेपना

नहीं चाहता, उलटीको कोई मनुष्य चाटना नहीं चाहता, विषको कोई खाना नहीं चाहता, दु:खको कोई सिर चढ़ाकर स्वीकार नहीं करता, रोगसे कोई प्रीति नहीं करना चाहता। इसी प्रकार जब इस लोक और परलोकके तमाम भोग-पदार्थोंमें, स्थितियों और अवस्थाओंमें तुम्हारी

मल-बुद्धि, वमन-बुद्धि, विष-बुद्धि, दु:ख-बुद्धि और रोग-बुद्धि हो जायगी, वे सब इसी प्रकारके दिखायी देंगे, तब उनसे तुम्हारा मन आप ही हट जायगा। फिर उनमें

प्राप्त करनेकी कामना या इच्छा होना-आदि बातें नहीं

जिनके पास भोग-पदार्थ अधिक हैं, उनके प्रति तथा जिन साधनोंसे भोग-पदार्थींकी प्राप्ति सुगम समझी जाती है, उन साधनोंके प्रति तुम्हारे मनमें सम्मान और प्रीतिका भाव होगा ही। तुम स्वयं उस सम्मान तथा प्रेमको प्राप्त करना चाहोगे और उसीमें अपना गौरव तथा सौभाग्य समझोगे। जिनके पास भोग-पदार्थ नहीं हैं या अपेक्षाकृत कम हैं, उन्हें तुम अभागा समझोगे, उनके प्रति सम्मान

छटपटाता रहेगा। तुम ऊपरसे चाहे जितना भी हँसो-तुम्हारा अन्तर भोगोंके अभावमें रोता-कलपता रहेगा।

यही तो भोगकामना है। इसके रहते तुम निष्काम कैसे

बुद्धि, आदर-बुद्धि, जबतक रहेगी, तबतक भोगोंके प्रति,

याद रखो—भोग-पदार्थोंमें सुख-बृद्धि, आवश्यक-

न आसक्ति रहेगी, न मोह ही रहेगा। फिर उन्हें अपनाना, और प्रेमका भाव तुम्हारे मनमें तथा व्यवहारमें नहीं होगा। तुम उनकी उपेक्षा करोगे। इसलिये तुम स्वयं भी अपना बनाना, उनपर अपनी ममताकी मुहर लगाना, उनके न होनेपर छटपटाना, चले जानेपर शोक करना, इस अभाग्य, इस सम्मान तथा प्रेमके अभाव और चले जानेकी आशंकासे ही व्याकुल हो जाना, उनको लोगोंकी उपेक्षासे डरोगे। ऐसा होनेमें अपना दुर्भाग्य

मानकर ऐसी स्थितिसे सर्वथा दूर रहना चाहोगे, जबतक

एक बड़े आश्वासनकी, एक अभूतपूर्व सुखकी और चंगुलसे तुम नहीं छूट सकोगे। याद रखो-भोगसहित और भोगरहित सभी विलक्षण शान्तिकी अनुभूति होगी। अवस्थाओंमें सर्वत्र भगवान् हैं; इसलिये आदर सबका याद रखो-सुख-शान्ति वस्तुओंमें नहीं है, वह करो, सम्मान सबका करो, पर करो भगवान् समझकर, मनकी निष्काम-स्थितिमें ही है। जब तुम्हारा मन भोग समझकर नहीं। भोग समझकर करोगे तो कामना और स्पृहासे रहित हो जायगा, जब तुम्हारी भोगरहितमें तुम्हारी आदर या सम्मान-बुद्धि नहीं रहेगी। ममताकी बेड़ी कट जायगी एवं जब तुम्हारा अहंकार भगवान्के दिव्य चरणकमल-युगलमें समर्पित होकर मनसे भोगोंके आदरका बहिष्कार कर दो-निकाल धन्य हो जायगा, तभी तुम सच्ची शान्ति पा दो और वह तभी निकलेगा, जब भोगोंमें सुख-बुद्धि और आवश्यक-बुद्धिका सर्वथा अभाव हो जायगा। सकोगे और तभी तुम्हें यथार्थ सुखका शुभ साक्षात्कार तब उनके अभावके जीवनमें एक भारमुक्त स्थितिकी, होगा। 'शिव' व्रज-विभूति [परम संत श्रीगयाप्रसादजी महाराजके सद्पदेश] १. श्रीप्राणनाथकी कृपाको स्मरण बारंबार करतो रहे। १७. कहो कम, सुनो कम, करो अधिक। २. इनको पूर्ण आश्रय राखे। १८. भजनमें बाधा परै वाकूँ सहनों महापाप है। ३. सदैव प्रसन्न शान्त रहे। १९. यही विचार रहे कि श्रीनाम-जप कैसे बने। ४. काहुको बुरो न चाहै। २०. जीभकौ एक ही मुख्य काम श्रीनाम रटे। ५. काहूकी निन्दा न करे। २१. काननकौ एक ही मुख्य काम श्रीनाम-श्रवण। ६. क्रोध न करे। २२. मन कौ एक ही काम श्रीनाम-जपमें पूर्ण आनन्द ७. सबको सम्मान करे, काहू कौ अपमान न करै। लेनौ । ८. भजन करिबे को नियम राखे नित्यको नियम नित्य २३. समस्त पुण्यन कौ एक ही फल कि श्रीनाम भगवान्में पूर्ण निष्कामता होय। ही पुरो कर लेय। २४. जीवनकी सफलता केवल श्रीनाम-जपकी लगनमें। ९. मेरौ यह जन्म भजन करिबे के ताईं ही भयो है, ऐसो दुढ विचार राखे। २५. भजनकौ मुख्य फल भजन। १०. जहाँ ताईं है सकै, अपने भजन-साधन तथा अपने २६. भजन सौं कबहू तृप्त न होय। अनुभव कुँ गुप्त ही राखै। २७. सौभाग्य एक, भजन ही सोहाय। ११. समय कूँ व्यर्थ न खोवे। २८. दुर्भाग्य भजन छोड़िकै अन्य काममें लगनौ। १२. शरीरकी स्वस्थतापर ध्यान राखै। २९. भजन ही साधन, भजन ही साध्य। १३. श्रीप्राणनाथमें प्रेम होइवेकी इच्छा राखे। ३०. श्रीप्राणनाथकी कृपाको यही परिचय कि श्रीनाम १४. सबसौं प्रेम करनौं किंतु काहू सौं आसक्त न होय। कौ पूर्ण आश्रय है जाय। १५. अभ्यास बढ़ानौ कि निरंतर श्रीराम-जप होतौ रहै। ३१. भजन करते-करते जीवै। श्रीनाम रटते-रटते ही १६. एक ही इच्छा बढ़ती जाय कि श्रीराम-जपमें पूर्ण मरै। रुचि है जाय। ३२. नाम-नामीमें अभेद-भाव राखे।

व्रज-विभृति

संख्या ९]

श्रीरामका पिताको जलदान आवरणचित्र-परिचय—

श्रीराम-वनवासके बाद महाराज दशरथने उनके वियोगमें उत्साह नहीं होता। पिताके परलोकवासी हो जानेपर अब कौन मुझे वहाँ शिक्षा देगा? पहले जब मैं उनकी किसी अपना प्राण त्याग दिया। गुरुकी आज्ञासे ननिहालसे वापस

लौटकर भरतजीने पिताका अन्तिम संस्कार तो विधिवत् आज्ञाका पालन करता था, तो वे मेरे सद्व्यवहारको

सम्पन्न किया, परंतु गुरुदेव वसिष्ठके आदेश और माता कौसल्याके अनुरोधपर भी उन्होंने राजसिंहासनपर बैठना

स्वीकार नहीं किया। सबको साथ लेकर वे श्रीरामको मनानेके

लिये पैदल ही चित्रकृट चल दिये। चित्रकृटमें श्रीरामका

दर्शनकर वे उनके चरणोंमें गिर पडे।

जटा और चीर धारण किये भरतको हाथ जोडकर पृथ्वीपर पड़े देखकर श्रीरामने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा

लिया। इसके बाद उन्हें गोदमें बिठाकर श्रीरामने बडे आदरसे पूछा—'तात! पिताजी कहाँ हैं, जो आज तुम इस

वनमें आये हो। उनके जीतेजी तो तुम वनमें नहीं आ सकते थे। महाराज जीवित हैं न? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि वे अत्यन्त दुखी होकर सहसा परलोकवासी हो गये हों

और इसलिये तुम्हें स्वयं यहाँ आना पड़ा हो? हे सौम्य! तुम किस कारणसे राज्य छोडकर वल्कल, कृष्णमृगचर्म और जटा धारणकर इस देशमें आये हो?'

श्रीरामके इस प्रकारके पूछनेपर भरतने हाथ जोडकर कहा—'आर्य! मेरी माता कैकेयीकी प्रेरणासे पिताजीने आपको वनवास देने-जैसा कठोर कार्य कर डाला, परंत्

फिर वे पुत्रशोकसे पीडित हो हम लोगोंको छोडकर स्वर्ग सिधार गये।' ऐसा कहते हुए भरत नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए पुनः श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर गये।

भरतकी बातोंसे पिताकी मृत्युका समाचार जानकर

श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा दु:ख हुआ, वे अचेत-से होकर

पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर होशमें आनेपर वे नेत्रोंसे आँसू

बहाने लगे और भरतसे धर्मयुक्त वचन बोले—'हाय!

श्रीरामने अपने भाइयोंके साथ पिताका पिण्डदान किया। उन्होंने इंगुदीके गूदेमें बेर मिलाकर उसका पिण्ड तैयार

देखकर मेरा उत्साह बढानेके लिये कई बातें सुनाया करते

थे। वे कानोंको सुख पहुँचानेवाली बातें अब मुझे कहाँ

सुननेको मिलेंगी?' भरतसे ऐसा कहकर शोकसन्तप्त

श्रीरामने अपनी पत्नीके पास आकर कहा—'सीते! तुम्हारे

श्वशुर चल बसे। लक्ष्मण! तुम पितृहीन हो गये! भरत

पिताजीके स्वर्गवासका दुखदायी समाचार सुना रहे हैं।'

अपने श्वशुर महाराज दशरथकी मृत्यु सुनकर सीताकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये। वे अपने प्रियतम श्रीरामचन्द्रजीकी

ओर देख न सर्कों। तदनन्तर रोती हुई जनककुमारीको

समझा-बुझाकर शोकमग्न श्रीरामने अत्यन्त दुखी हुए

लक्ष्मणसे कहा—'भाई! तुम इंगुदीका पिसा हुआ फल

और चीर एवं उत्तरीय ले आओ। मैं महात्मा पिताको जल

देने जाऊँगा। सीता आगे-आगे चलें, इनके पीछे तुम चलो और तुम्हारे पीछे मैं चल्रॅंगा। शोकके समयकी यही

सेवक, आत्मज्ञानी और श्रीरामके अत्यन्त भक्त थे, सब

राजकुमारोंके साथ श्रीरामको धैर्य बँधाकर उन्हें हाथका

सहारा दे कल्याणमयी मन्दािकनीके तटपर ले गये। वहाँ एक

उत्तम घाटपर जाकर उन सबने महाराजको जलांजलि दी। श्रीरामचन्द्रजीने दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके अंजलिमें

जल भरकर रोते हुए कहा—'पुज्य पिताजी! मेरा दिया हुआ

यह निर्मल जल आपकी दिवंगत आत्माको अक्षयरूपसे

तत्पश्चात् महामित सुमन्त्र, जो राजकुलके परम्परागत

परिपाटी है, जो अत्यन्त दारुण होती है।'

किया और बिछे हुए कुशोंपर उसे रखकर अत्यन्त दुखी हो रोते हुए कहा—'महाराज! प्रसन्नतापूर्वक इसे स्वीकार

पिताजी मेरे ही शोकसे मृत्युको प्राप्त हुए और मैं उनका दाह-संस्कार भी न कर सका। भरत! तुम्हीं कृतार्थ हो— तुम्हारा ही जीवन सफल है; क्योंकि तुमने और शत्रुघ्नने

महाराजके प्रत्येक पारलौकिक कृत्यमें सम्मिलित होकर उनका पूर्ण सत्कार किया है। अब तो मुझे वनवासकी

प्राप्त हो।' तदनन्तर मन्दािकनीके जलसे किनारेपर आकर

कीजिये; क्योंकि आजकल यही हमलोगोंका भोजन है। मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, वही उसके देवता भी ग्रहण करते हैं।'[वाल्मीकीय रामायण]

अवधि समाप्त हो जानेके बाद भी अयोध्यामें चलनेका

मरणासन्नको भगवन्नाम सुनाना अति महत्त्वपूर्ण संख्या ९] मरणासन्नको भगवन्नाम सुनाना अति महत्त्वपूर्ण (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) मरणासन्न मनुष्यका मल-मूत्र साफ करना बडी जायगा। इस प्रकार करनेवाला मुझे बहुत प्यारा है, सेवा है। पर वह तो दूर, मरणासन्न व्यक्तिको भगवानुका ऐसा प्यारा न कोई दूसरा हुआ है, न होगा, यह नाम और कीर्तन सुनाना भी मुश्किल हो रहा है। भगवान्ने भगवान्का वाक्य है। एक व्यक्ति पचास वर्षोंसे साधन कर रहा है, उसका यदि हमारे द्वारा नाम सुनानेसे कल्याण होता है, अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्। तो अपना तो कल्याण हो ही गया, नाम सुनानेका फल यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ जो पुरुष अन्तकालमें मेरेको ही स्मरण करता हुआ हमारा मनुष्य-जन्म कल्याणके लिये है। यदि शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको अपना कल्याण नहीं हुआ और हमारे द्वारा दूसरेका प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। कल्याण हो गया तो हमारा कल्याण हो ही गया। जो इस श्लोकमें भगवान्ने कह दिया कि मेरा ही स्वयं उपवास करके दूसरेको भोजन कराता है, वह स्वयं स्मरण करता हुआ शरीरको छोड़कर जाता है उसकी भोजन करनेसे भी बढ़कर है। हमारे द्वारा हजारों वैकुण्ठ मुक्तिमें कोई शंकाकी बात नहीं। इसमें कोई शंका करे जाते हैं, स्वयं नरकमें जायें तो उससे भी बढ़कर है, वहाँ तो क्या कहें? जाकर नरकके जीवोंका कल्याण करें। ऐसा करनेसे यहाँ चार सौ व्यक्तियोंको सत्संग सुनानेकी अपेक्षा उनको भगवानुकी पदवी मिलेगी; क्योंकि भगवानुका मरणासन्न व्यक्तिको भगवन्नाम सुनाना अधिक अच्छा काम है जीवोंका उद्धार करना, वह जीवोंका उद्धार है; क्योंकि यदि एक व्यक्तिका भी भगवन्नाम सुनानेसे करता है तो भगवान् है। मरणासन्न व्यक्तिको नाम कल्याण हो गया तो मेरा तो काम बन गया। ज्ञानकी सुनानेकी ऐसी महिमा है। मरणासन्न व्यक्तिका पाँच दुष्टिसे सभी आत्मा हैं, किसी भी शरीरकी आत्माका मिनट भगवन्नाम सुनानेसे जो लाभ होता है, वह साधन करनेसे बीस वर्षमें भी नहीं होता। कल्याण हुआ तो अपना ही कल्याण हुआ; क्योंकि वह अपना ही आत्मा है। इसपर विचार करनेसे यही बात आती है कि सब एक भाई रात-दिन इस तरह मरणासन्न व्यक्तिको काम छोड़कर यह काम करना बड़ा ही उत्तम है, भजन-भगवन्नाम नहीं सुना सकता, न मालूम किसके सुनानेकी सत्संगसे भी बढ़कर है। सबसे बढ़कर है, मुक्तिसे भी पारीमें वैसा अच्छा मौका आवे। भगवन्नाम सुनानेमें बढ़कर है। इसकी महिमा बहुत अधिक है। मरनेवाले अपना भजन होता है और दूसरेको भी सुननेको मिलता व्यक्तिके पास भगवान्का नाम, गीता सुनाना और वह सुनते हुए मर गया तो उसका कल्याण है ही, अपना है। कोई बीमार है, कोई मर रहा है, उसकी सेवा करना बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। उसको भगवन्नाम तथा गीताजी भी कल्याण है। यह काम सबसे बढ़कर है, लोभी सुनाना बड़ा कल्याणकारी है। आदमीकी तरह ऐसे अवसरकी खोज करनेकी चेष्टा मरणासन्न व्यक्तिको गीता-पाठ, राम-नाम, करनी चाहिये। मरणासन्न व्यक्तिको भगवान्का नाम, गीता सुनाना यह काम सबसे महत्त्वपूर्ण समझकर करना नारायणका नाम सुना रहे हैं, सुनते-सुनते वह मर गया, उसको तो भगवान्की प्राप्ति हो गयी, सुनानेवालेको क्या चाहिये। मिला ? भगवान् कहते हैं—'हे अर्जुन! जो गीताको मेरे नारायण नारायण नारायण श्रीमन्नारायण नारायण भक्तोंको सुनाये, वह मेरी भक्तिके द्वारा मुझे प्राप्त हो नारायण'''

हमारे आन्तरिक शत्रु— उत्तेजनाके क्षणोंमें [क्रोध—कारण और निवारण] (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) यह क्रोध आता कहाँसे है ? इसका उद्गम कहाँ वाये नादानी कि वक्ते-मर्ग यह साबित हुआ, है ? 'गीताप्रवचन' में सन्त विनोबाने इसकी सुन्दर व्याख्या ख्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफसाना था। 'पानी ऊपरसे साफ दीखता है; परंतु उसमें पत्थर इस नादानीको मिटाये बिना काम-क्रोधसे छुटकारा डालिये, तुरन्त ही अन्दरकी गन्दगी ऊपर तैर आयेगी। मिलना असम्भव है। '**सत्यधर्माय दुष्टये**' हमें हिरण्यमय वैसी ही दशा हमारे मनकी है। मनके अन्त:सरोवरमें ढक्कनको उठाना ही होगा। मनके अन्त:सरोवरमें हमने नीचे घूटनेभर गन्दगी जमा रहती है। बाहरी वस्तुसे जो गन्दगी भर रखी है, उसे निकाले बिना काम उसका स्पर्श होते ही वह दिखायी देने लगती है। हम चलनेवाला नहीं। मनोमलको नष्ट किये बिना न तो हम शान्ति प्राप्त कर सकते हैं, न आनन्द। जीवनके परम कहते हैं, उसे गुस्सा आ गया। तो यह गुस्सा कहीं बाहरसे आ गया? यह तो अन्दर ही था! मनमें यदि न लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये हमें इन विकारोंसे अपनेको मुक्त होता तो वह बाहर दिखायी ही न देता!' करना ही होगा। उस दिन अकस्मात् श.....ने मुझसे पूछ ही तो वस्तृत: काम-क्रोध आदि विकार तो हमने मनके भीतर सँजो-सँजोकर रख छोड़े हैं। उनके संस्कार मनमें दिया—'अच्छा बताइये तो क्रोधसे कैसे छुटकारा पाया ठसाठस भरे पडे हैं। वे प्रकट होनेके लिये कुलबुलाया जाय ?' करते हैं। मौका मिला और वे हाजिर! प्रसंग उपस्थित मेरे पास इस प्रश्नका उत्तर ही क्या है? क्रोधसे हुआ नहीं कि उन्हें हाजिर होते देर नहीं लगती! मैंने छुटकारा पा लिया होता तो मैं इस प्रश्नका उत्तर देनेका अधिकारी हो सकता था। परंतु अपनी हालत तो बच्चोंको हम कागजों, पत्थरों, चूडियोंके टुकडे, में पहले ही बता चुका हूँ। यहाँ तो अभी 'दिल्ली दूर अस्त'! फिर भी-सलाईके खाली डिब्बे, फटे-पुराने चित्र आदि सँजोते देखकर उनके परिग्रहकी आदतपर हँसते हैं, परंतु हम पानी मिलै न आपको औरन बकसत छीर। जो मनमें दुनियाभरके फालतु विचार, गन्दे संस्कार, आपन मन निश्चल नहीं और बँधावत धीर॥ दुर्भावनाएँ, अनावश्यक स्मृतियाँ सँजोया करते हैं, उनपर कभी हमें हँसी आती है ? कैसी नादानी है हमारी यह! डॉक्टरका बेटा बिना डॉक्टरी पढे घाव चीरने नहीं बैठता। वकालत पढ़े बिना वकीलका बेटा वकालत करने बचोंके खजानेकी एक कौड़ी भी कोई छीन ले नहीं जाता। परंतु हमारे लिये ये बातें लागू नहीं होतीं। फिर देखिये उनका रोना-चिल्लाना, बिलखना और पैर अमल भले ही न करें, परंतु उपदेश देनेको तो हम अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते ही हैं। इसी हैसियतसे मैंने पटकना। परंत हमारा क्रोध उनसे किसी अंशमें कम नहीं! रुपया-पैसा, धन-दौलत, जमीन-मकान, स्त्री-पुत्र शको समझानेकी चेष्टा की। आदि हमारे खिलौने कोई छीन ले, उन्हें तोड-फोड दे, किसी प्रकार नष्ट कर दे, हमारे विचारोंको, हमारे श.....एक कम्पनीमें काम करते हैं। वहाँ दुर्व्यवस्था संस्कारोंको, हमारी वासनाओंको जरा-सा ठुकरा दे, तथा कुछ ऐसे ही अन्य कारणोंसे कर्मचारियोंको समयसे हलकी-सी भी ठेस मार दे, फिर देखिये हमारा ताव! पैसा नहीं मिलता। दो-दो, तीन-तीन मासकी देर हो Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH OVE BY Ayinash/Sha नीदीनीम हम बच्चास किसी केंद्रर कम नहीं! जानी नियम-सा बन गया है। समयपर पैसा न मिलनपर

संख्या ९] उत्तेजना	के क्षणोंमें ११
**************************************	*************************************
और उसके अभावमें कष्ट होनेपर चित्तका क्षुब्ध होना	गाँधीजी कहते हैं—'हमारा वास्तविक शत्रु अन्तरमें
स्वाभाविक है। शगये थे मैनेजरसे पैसा मॉॅंगने। न	रहनेवाला चाहे काम कहिये, चाहे क्रोध—यही है।'
मिलनेपर उनका क्रुद्ध हो उठना अस्वाभाविक नहीं था।	इसीको जीतनेकी जरूरत है।
जल्दी ही गरमागरमी आ गयी बातचीतमें।	पर यह है बहुत कठिन। बड़े अभ्याससे इसपर
पैसा भी नहीं मिला, पश्चात्ताप भी हुआ। ' <i>दोऊ</i>	विजय प्राप्त की जा सकती है। बड़ी साधना करनी
दीनसे गये पाँड़े, हलुआ मिला न माँड़े!'	पड़ती है इसके लिये। तभी न कहा गया है—
उनसे भेंट हुई तो उनकी ज़बानपर यही प्रश्न था	जग जीतनेसे बढ़कर है इन्द्रियोंको जीत लेना!
कि इस क्रोधको कैसे रोका जाय?	× × ×
× × ×	जिस व्यक्तिने विकारोंपर विजय प्राप्त कर ली,
मैंने कहा—क्रोधको रोकनेके उपाय तो कितने ही	विषयोंको जीत लिया, उससे बढ़कर और कौन हो सकता है ?
बताये गये हैं। कुछ तात्कालिक हैं, कुछ स्थायी। जैसे—	शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
(१) गालीका जवाब गालीसे मत दो।	कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥
(२) मौन हो जाओ।	(गीता ५।२३)
(३) मैदान छोड़ दो।	शरीर छूटनेसे पहले जो व्यक्ति काम और क्रोधके
(४) राम-राम जपने लगो।	वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वही तो योगी है,
(५) 'ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: 'का जप करने लगो।	वही तो सुखी है, जिन्दा होते तो मुर्दा बन जाता है, काम-
(६) शीतल जलसे स्नान कर लो।	क्रोध आदि विकार जिसे विचलित नहीं कर पाते, वही पुरुष
(७) प्रसंग बदल दो।	तो सच्चा सुखी है।मानव-जीवनकी सार्थकता तो इसीमें है।
(८) क्रोधके पात्रसे क्षमा माँग लो।	शव बने बिना शिवकी प्राप्ति हो ही कैसे सकती है ?
ये हुए तात्कालिक उपाय, क्रोधको स्थायी रूपसे	× × ×
शान्त करनेके लिये कुछ अन्य उपाय हैं—	गीता कहती है— 'कामात्क्रोधोऽभिजायते!'
(९) मालिककी मर्जीको अपनी मर्जी बना लो।	कामसे क्रोधकी उत्पत्ति होती है।
उनके मंगलविधानको मंगलमय मान लो।	सो कैसे?
(१०) वाणीके संयमका अभ्यास करो।	शंकराचार्य कहते हैं—
(११) सात्त्विक जीवन अपनाओ।	'कामात् कुतश्चित् प्रतिहतात् क्रोधः अभिजायते।'
(१२) सोचो कि क्रोधसे बिगड़ा काम बिगड़ेगा	कामके प्रतिहृत होनेपर उसमेंसे क्रोध पैदा होता है।
ही, सुधरेगा नहीं।	'बुझै न काम अगिनि 'तुलसी' कहुँ विषय भोग बहु घीते!'
(१३) क्षमा-धारणका अभ्यास करो।	कामनाओंका कभी अन्त होनेवाला है?
(१४) घट-घटमें ब्रह्मके दर्शन करो।	जहाँ उनकी पूर्तिमें बाधा पड़ी कि क्रोध आया!
(१५) शान्तिको न फिसलने देनेका निश्चय करो।	× × ×
× × ×	एकनाथ कहते हैं—'काम या तो पूरा होगा या
गीता (३।३७)-में कहा गया है—	अधूरा रहेगा। अधूरा रहा तो क्रोध पैदा होगा, पूरा हो
काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।	गया तो लोभको जन्म देगा। अतः 'क्रोध' शब्दका अर्थ
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥	क्रोध और लोभ मिलाकर व्यापक करना चाहिये।'
'रजोगुणसे पैदा होनेवाला यह काम ही क्रोध है।	× × ×
बड़ा पेटू है यह। कभी इसका पेट भरता ही नहीं। यह	विनोबा 'स्थितप्रज्ञदर्शन'में कहते हैं—'क्रुध' धातुका
बड़ा पापी है। इसे ही तू अपना शत्रु समझ।'	मूल अर्थ तौलनिक भाषाशास्त्रके अनुसार क्षोभ, खलबली

भाग ९६ है। इसके समानार्थक 'कुप' धातुका तो 'क्षोभ' के है, परंतु उसके सम्बन्धमें जो कल्पना है, ख्याल है, वह अर्थमें संस्कृतमें प्राय: सदा ही प्रयोग होता है। क्रोधका मेरा है। अर्थात् मेरे इन्द्रियाधीन चित्तका है। इस तरह स्थूल एवं हमारा परिचित अर्थ है गुस्सा—सन्ताप। यहाँ मैं सृष्टिके भिन्न-भिन्न पदार्थोंके विषयमें अनुकूल या अभीष्ट है चित्तका चलन अथवा क्षोभ। प्रतिकूल वृत्ति बनाता हूँ। वह क्षोभका कारण होती है। 'कामके उत्पन्न होते ही मनकी स्थिरता डिगने लगती बाह्य वस्तुकी अभिलाषा करते रहनेसे आत्मा न्यूनताको प्राप्त होता है और इससे चित्त क्षुब्ध होता है। चित्तकी है। मनमें अप्रसन्नता उत्पन्न होती है। कामकी पूर्ति हो या न हो, उसके उत्पन्न होते ही चित्तकी समता चली जाती है।' इस क्षुब्धताको ही यहाँ 'क्रोध' कहा है।' 'काम कहते हैं मनकी इस छटपटाहटको कि मुझे अमुक चीज चाहिये। और, यही अप्रसन्नता है। जबतक चित्तमें कामनाका उदय हुआ नहीं कि क्षोभ आया। क्षोभ आते ही चित्त आत्माका आश्रय छोड़कर जगत्के वह विषय प्राप्त नहीं होता तबतक मैं पूर्ण नहीं हूँ। उसके बगैर मुझमें कमी है। यही कारण है जो कामनासे प्राणी-पदार्थोंके लिये छटपटाने लगता है। यह छटपटाहट, मन मलिन होता है।' यह आकुलता ही क्रोधकी जननी है। इसीसे बुद्धि अपने 'संस्कृतमें साफ पानीको 'प्रसन्नं जलम्' कहते हैं। स्थानसे चलित हो जाती है। उसका सन्तुलन जाता रहता प्रसन्नताका अर्थ है निर्मलता और पारदर्शकता। मल है। मनुष्य ऊटपटांग बकने लगता है, ऊल-जलूल काम होता है पानीके बाहरकी वस्तु। उसका रंग जहाँ पानीपर करने लगता है। इसीका नाम क्रोध है। इसीको गुस्सा चढ़ा कि वह मटमैला हुआ।' कहा जाता है। इसीका नाम अप्रसन्नता है। 'आत्मा जब अपने मुलस्वरूपमें रहता है तो प्रसन्न रहता है। उसे बाहरी वस्तुकी इच्छा होना, उसका रंग क्रोधके प्रसंग हमारे जीवनमें हजारों बार उपस्थित उसपर चढने लगना उसका मैलापन है। यही अप्रसन्नता होते हैं। हमारे आराममें बाधा पडती है, हमें क्रोध आ है। बाह्य कामना जहाँ आयी कि मिलावट हुई। तब जाता है। हमारे स्वार्थमें व्याघात होता है, हमें क्रोध आ कामनाके सामने आत्मा गौण हो जाता है, फीका पड़ जाता है। हमारी इच्छा और रुचिके विपरीत कुछ होता जाता है। उसका मन चिलत होने लगता है, अशान्ति, है, हमें क्रोध आ जाता है। हमारा कोई काम बिगड़ता व्याकुलता मालूम होने लगती है, क्षोभ होता है। इसीको है, कोई चीज खराब हो जाती है, हमें क्रोध आ जाता है। यहाँ 'क्रोध' कहा गया है।' हमारे अहंकारको ठेस लगती है, हमारी शान किरिकरी होती है, हमें क्रोध आ जाता है। कामनासे चित्तक्षोभ क्यों होता है, इसकी व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं-हमारे हृदयमें कामना है—आरामकी, सुखोपभोगकी। 'आत्माके परिपूर्ण और अनन्त गुणी होते हुए भी हम चाहते हैं कि सारी दुनिया उसी ढंगसे घूमे जिस ढंगसे मनुष्य बाह्य वस्तुके लिये क्यों छटपटाता है ? बाहरकी हम घुमाना चाहें। हम चाहते हैं कि हमारी ही शान रहे, इष्टप्राप्ति और अनिष्ट-परिहारके झंझटमें क्यों पड़ता हमारी ही तूती बोले, सभी लोग हमसे दबकर रहें, हमें ही है? इसका कारण यह है कि मनुष्यके चित्तको सब लोग महत्त्व दें, हमें ही ऊँचा मानें। इन सब आत्माका दर्शन नहीं होता। केवल बहिर्दर्शन होता है। इच्छाओंके विपरीत कुछ हुआ कि हमें क्रोध आया! बाहरी सृष्टिका सौन्दर्य उसे लुभाता है। असौन्दर्य त्रास देता है। वस्तुत: सौन्दर्य अथवा असौन्दर्य बाह्य वस्तुमें क्रोधसे छुटकारा पानेके लिये हमें इन सभी इच्छाओंपर काबू करना पड़ेगा। उसके लिये हमें स्वार्थ-नहीं है। वहाँ तो आकारमात्र है। तद्विषयक अनुकूल-त्याग करना होगा, कष्टोंको बिना नन्-नच किये प्रतिकूल वृत्ति मुख्यतः चित्तको करनी है।' 'चित्त इन्द्रियाधीन है। सृष्टि ईश्वरकी बनायी हुई स्वीकार करना होगा, हानि चाहे जैसी हो जाय, चेहरेपर

संख्या ९] उत्तेजनाके क्षणोंमें शिकन भी नहीं लानी होगी, अहंकारको धो बहाना मिल गया घलुएमें। हो सकता है मैनेजरके पास पैसा रहा हो, वह होगा, नम्रता धारण करनी पड़ेगी और निरन्तर क्षमाका अभ्यास करना होगा। आपको देना भी चाहता हो, पर आपने गरम पड़कर स्वयं ही अपना पक्ष कमजोर कर लिया। तब उसने यही ठीक शसे मैंने कहा—आप पैसा माँगने गये थे। समझा कि आपके क्रोधके दण्डस्वरूप आपको अभी पैसा पैसा आपको नहीं मिला। आपके स्वार्थमें बाधा आयी। नहीं दिया जाय। नम्र और आज्ञाकारी कर्मचारियोंको पहले आपके सुखोपभोगमें अड़चन उपस्थित हो गयी। आपको पैसा दे दिया जायगा, उसके बाद देखा जायगा। क्रोध आ गया। आपकी अभद्रतासे आपको जो हानि पहुँच सकती आप चाहते हैं कि आपको क्रोध न आये तो है, उसकी आशंका तो रहेगी ही। मौका पाते ही मैनेजर आपके चिन्तनकी धारा कुछ इस प्रकारकी होनी चाहिये— दूधकी मक्खीकी तरह आपको निकाल बाहर करेगा! क्रोध करनेसे क्या लाभ है? न खुदा ही मिले न विसाले सनम, न इधरके रहे, न उधरके रहे! (१) सम्भव है गरमागरमी करनेसे आपको पैसा मैं यह नहीं कहता कि आप पैसा नहीं माँगें। माँगें, मिल जाय। जरूर माँगें। मेहनतकी कमाई माँगनेका आपको पूरा हक है। (२) सम्भव है गरम पड़नेपर भी आपको पैसा न मैं तो सिर्फ यही कहता हूँ कि आप नम्रतापूर्वक मिले। मॉॅंगें, पैसेके लिये चित्तका सन्तुलन न खो दें। फिर भी अब पहली सम्भावनापर विचार कीजिये। पैसा न मिले तो सन्तोष रखें। नम्रतासे यह भी हो सकता है कि आपको पैसा मैनेजरने किसी प्रकार व्यवस्था करके आपको पैसा दे दिया। परंतु यह निश्चित है कि उसके दिलमें आपके देनेकी योजना न रहनेपर भी आपको पैसा मिल जाय। बारेमें एक गाँठ पड गयी। वह सोचेगा कि यह कर्मचारी सद्भाव मिलेगा मुफ्तमें! बडा अभद्र है। इसे बात करनेका भी शऊर नहीं है। ऐसे आदमीको जितनी जल्दी सम्भव हो, हटा देना चाहिये। क्रोधसे छुटकारा पानेके लिये स्वार्थत्याग पहली जब मौका मिलेगा, वह आपको जलील करनेकी शर्त है। कोशिश करेगा। वह आपके साथ कडाईसे पेश आयेगा, स्वार्थमें बाधा पड़ते ही हम गरम हो उठते हैं। आपकी तरक्की रोक लेगा और सदाके लिये आपके प्रति कोई-कोई तो इतने गरम हो उठते हैं कि मार-पीट, खूनखराबाकी डिग्रीतक जा पहुँचते हैं। एक दुर्भावना अपने हृदयमें बैठा लेगा। आपके गरम पडनेसे मैनेजरके अहंकारको ठेस उनसे अच्छे हैं वे, जो गरम तो पडते हैं, पर उनका क्रोध लगेगी, उसकी शानमें बट्टा लगेगा। हो सकता है कि उसके कारण वह पैसा देकर भी आपको हमेशाके लिये वाणीतक ही सीमित रहता है। मारपीटतक वे नहीं जाते। कामसे छुडवा दे। उनसे भी अच्छे हैं वे. जो वाणीमें भी क्रोधकी छाया नहीं आने देते। परंतु हृदयमें तो उनके क्रोध रह 'जलमें रहकर मगरसे बैर' ठीक नहीं होता। याद रखिये, पैसा ही सब कुछ नहीं है। पैसेसे सद्भाव कहीं ही जाता है। ऊँची चीज है। पैसा पाकर आपने सद्भाव खो दिया तो सबसे अच्छे हैं वे, जो हृदयसे भी क्रोधको निकाल यह बहुत बड़ी हानि हुई। बाहर करते हैं। उत्तेजनाके कैसे भी विषम-से-विषम क्षण उपस्थित हों, उनके चेहरेपर शिकनतक नहीं आती, अब दूसरी सम्भावनापर विचार कीजिये। हृदयमें भी क्षोभकी हलकी-सी लहर नहीं उठती! काश, आप गरम भी पड़े, पैसा भी नहीं मिला। पश्चात्ताप हम यह स्थिति प्राप्त कर सकें!

तीन प्रकारके प्रारब्ध

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्रारब्धपर मनुष्यका कोई वश नहीं, अपने प्रारब्ध मानना चाहिये। अपने किये हुए पूर्वसंचित कर्मोंमेंसे जो

कर्म फल देनेको उन्मुख होते हैं, उन्हें 'प्रारब्ध' नाम अथवा भगवान्की इच्छासे जैसा भी सुख-दु:ख प्राप्त

दिया गया है। वह प्रारब्ध ही पूर्वोक्त प्रकारसे अनिच्छा,

हो, उसे भगवानुका भेजा हुआ उपहार समझकर प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करे, यही मनुष्यका कर्तव्य है।

अपनेको दिखायी नहीं देता, परंतु अनुकूल या प्रतिकूल

जो कुछ भी ईश्वरेच्छासे प्राप्त होता है, वह जीवके

कल्याणके लिये ही होता है। कल्याणमय प्रभु कभी

किसी जीवका अमंगल नहीं करते। उनकी ओरसे जो

दण्ड मिलता है, उसमें भी उनकी अपार दया भरी रहती है। वे कर्मोंका भोग कराकर जीवको विशुद्ध एवं

मुक्तिका अधिकारी बनाना चाहते हैं। आत्महत्याको लोकमें अकालमृत्यु कहते हैं। परंतु

वास्तवमें अकालमृत्यु प्राय: किसीकी नहीं होती। प्रत्येक जीवकी मृत्युका समय उसके जन्मके साथ ही नियत हो

जाता है। वह समय आनेपर ही मृत्यु होती है। अत: वह 'कालमृत्यु' ही है। सुख-दु:ख या मृत्यु आदि

जितने भी भोग हैं, वे सब प्रारब्धके ही फल हैं। प्रारब्ध

या भोग भी तीन प्रकारसे होता है। अतएव उसके तीन भेद हो जाते हैं। उन भेदोंको क्रमश: अनिच्छा, परेच्छा

एवं स्वेच्छा प्रारब्ध कहते हैं। जिनको प्राप्त करनेकी

इच्छा न तो अपने मनमें रही हो और न दूसरे किसीकी

ही इच्छा ऐसा करने-करानेकी रही हो, उस अवस्थामें अनायास दैवयोगसे अपने-आप जो सुख-दु:खादिरूप

भोग प्राप्त हो जाते हैं, वे 'अनिच्छा प्रारब्ध' की ही देन हैं। दूसरोंकी इच्छासे प्राप्त होनेवाले सुख-दु:ख 'परेच्छा

प्रारब्ध' हैं तथा स्वयं इच्छा करके प्रयत्न करनेपर जो सुख-दु:ख उपलब्ध होते हैं, वे 'स्वेच्छा प्रारब्ध' जनित

माने गये हैं। इस धारणाके अनुसार यदि किसीके शरीरका दाह असावधानीके कारण अथवा बिना जाने हो गया हो तो

परेच्छा और स्वेच्छासे भोगा जाता है। आत्महत्यासे होनेवाली मृत्युको हम 'स्वेच्छा प्रारब्ध'

> का फल कह सकते हैं। एक बात और ध्यान देनेकी है। मृत्यु चाहे स्वेच्छा-प्रारब्धसे हुई या अनिच्छा-प्रारब्धसे,

> उसमें जो निमित्त बन गया, वह शास्त्रदृष्टिसे अच्छा नहीं है। आगमें जलने या पानीमें डूबने आदिसे होनेवाली

मृत्युको 'अपमृत्यु' कहते हैं। इससे जीवकी सद्गतिमें बाधा पड़ती है। अनिच्छा-प्रारब्धसे होनेवाली अपमृत्यु

महान् पाप भी है।

दुर्मृत्युजनित दोषकी निवृत्ति होकर मृतात्माकी सद्गति

होती है। आत्महत्याका फल बडा भयंकर बताया गया है। आत्महत्यारोंको नरकके उस अन्धकारमय गर्तमें गिरना पडता है जहाँ कभी सूर्यके दर्शन नहीं होते।

यजुर्वेदमें लिखा है-असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

इसके लिये विधि-विधानके साथ मृतात्मका श्राद्ध

और नारायण-बलि होना चाहिये। जिस स्थानपर उसकी मृत्यु हुई हो, वहाँ एक सप्ताहतक गीता, श्रीविष्णुसहस्रनाम तथा श्रीमद्भागवतका सप्ताह हो। अखण्ड हरिकीर्तनकी

भी व्यवस्था की जाय और इन सबका पुण्य मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे संकल्प करके दे दिया जाय। इससे भगवान्की

विधिपूर्वक 'नारायण-बलि' करनेकी आज्ञा दी गयी है। साथ ही गीता एवं श्रीमद्भागवत आदिके पाठसे भी

शास्त्रोंमें अपमृत्युके दोषसे मुक्त होनेके लिये

पापका फल होनेपर भी स्वयं पापरूप नहीं है। परंतु आत्महत्या पापका फल होनेके साथ-साथ स्वत: एक

संख्या ९] परलोक-विचार परलोक-विचार (तत्त्वदर्शी महात्मा श्रीतैलंग स्वामीजीका उपदेश) पूर्व और पर—पिछला और अगला जन्म है अथवा समय है, वही उसकी परमायु है। यदि आध्यात्मिक नहीं-यह जाननेके लिये यदि स्थिर-चित्तसे विचार अर्थको लिया जाय तो जीवकी परमायु अनन्त है। जीव किया जाय तो तीनों जन्म—पूर्व, वर्तमान और भविष्यत् अक्षय और अमर है। जीवके ध्वंस होनेपर भी उसका स्पष्ट दिखायी देंगे। पूर्वजन्ममें मैंने जैसे कार्य किये हैं उपकरण कभी नष्ट नहीं होता। साधारण जनोंका और मैं जिस प्रकारके स्वभावका मनुष्य था, मृत्युके विश्वास है कि जो जीव जितना पुण्यवान् है, उसकी अनन्तर कर्मफलके अनुसार उन्हीं सब परमाणुओंको परमायु भी उतनी ही अधिक होती है और वह लेकर मेरी यह वर्तमान देह बनी है। वर्तमान जीवनमें मैंने तदनुसार ही अधिक समयतक जीवित रहता है; परंतु अपने द्वारा अच्छे-बुरे जैसे कुछ काम किये हैं, उन यह भूल है। जीव संसारसे जितना दूर रहेगा, उतना ही सबको मैं भलीभाँति जानता हूँ। अच्छा काम करनेसे उसे पाप स्पर्श नहीं कर सकेगा। जीव कर्मफल भोगनेके लिये संसारमें आता है। कारण, संसार ही अच्छा फल और बुरा काम करनेसे बुरा फल भोगना पड़ेगा। इस समय जो व्यक्ति विचारकर देखेगा, वही कर्मफल-भोगका स्थान है। अतएव जितने दिनोंतक जान सकेगा कि वर्तमान जीवनमें मैं किस प्रकारका जीवका कर्मफल-भोग समाप्त नहीं होता-जितने मनुष्य तैयार हो रहा हूँ और मेरे इन सब कामोंके अनुसार दिनोंतक जीव पापसे मुक्त नहीं होता, उतने दिनोंतक भविष्य-जीवनमें मैं कैसे स्वभाव और किस प्रकारकी उसे संसारमें रहना पड़ता है। जो पुण्यवान् है, वह अवस्थाका आदमी बनूँगा। प्रयत्न करनेपर जिस बातको अधिक दिनोंतक संसारवासी नहीं होता। जो जितना स्वयं जान सकते हैं, उसे जाननेके लिये दूसरेकी पापी है, उसे उतने ही दिनोंतक संसारमें रहकर कर्मफल सहायताकी आवश्यकता ही क्या है? भुगतना पडता है। जिसका कर्मफल शेष हो जाता है, वर्तमान जन्मका इहलोक ही पूर्वजन्मका परलोक वह संसारसे चला जाता है। जिसका जीवन जितना और वर्तमान जन्मका परलोक ही भविष्य-जन्मका शीघ्र लयको प्राप्त होता है, वह उतना ही पुण्यवान् है। इहलोक है। इस स्थूल-देहके भीतर दूसरी देह है, उसका जीवन उतना ही पाप-शून्य है। पाप-शून्य उसका नाम सूक्ष्म-देह है एवं उसके भीतर भी एक अन्य होनेसे वह ईश्वरमें लय हो जाता है, उस समय उसकी देह है, जिसका नाम कारण-देह है। केलेकी छालकी आयु असीम है। जबतक ईश्वरकी सत्ता विद्यमान भाँति अवस्थित यह त्रिविध देह ही संसार-संज्ञामें रहेगी, तबतक उसकी सत्ता वर्तमान रहेगी। विराजमान है। मनुष्य-देहका संघटन, आकृति, वर्ण, मनुष्य जैसे आगे-आगे पुण्य करता रहता है, स्वभाव, विद्वान् अथवा मुर्ख, कर्कश अथवा नम्र, उसका फल-भोग भी दिन-रातकी तरह आगे-आगे चलता रहता है। इसीलिये कर्मफल शेष न होनेसे बार-धार्मिक या अधार्मिक, साधु अथवा चोर, सरल या कुटिल, राजा अथवा जमींदार, मध्यवित्त या गरीब, उच्च बार संसारमें आना पडता है। उसके जन्म और मरणका वंशमें जन्म अथवा नीच वंशमें जन्म आदि सभी पूर्व-ताँता बँधा रहता है। जिनका यह विश्वास है कि पुनर्वार जन्मके कर्म-फलके अनुसार वर्तमान देहके रूपमें प्राप्त जन्म नहीं ग्रहण करना पड़ता, मृत्यु ही उसका शेष है, हुए हैं। * इसी प्रकार फिर इस जीवनका कर्मफल लेकर उनकी यह धारणा गलत है। ईश्वर है, यह स्वीकार कर अगले जन्मकी देहकी आकृति बनेगी। लेनेपर पुनर्जन्म भी अवश्य मानना पडेगा। यदि ईश्वर है तो मनुष्यका आत्मा भी है। ईश्वरका ध्वंस नहीं, जीवके भूमिष्ठ होनेसे आरम्भकर लयपर्यन्त जो * वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिव्यापको यथा। एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम्॥ (श्रीमद्भा० ६।१।४७)

भाग ९६ अतएव ईश्वरकी शक्ति आत्माका भी विनाश नहीं। यदि कष्ट भुगतना होगा। कितने ही लोग कह देते हैं कि पुनर्जन्म न हो तो ईश्वरको कभी दयामय नहीं कहा जा पाप-कर्म करनेमें प्रवृत्ति एवं पुण्य-कर्म करनेमें निवृत्ति सकता। कारण, इस जीवनमें कोई राजा, कोई प्रजा, कोई ईश्वरकी ही इच्छा और प्रेरणासे होती है, परंतु यह बड़े अज्ञानकी बात है। रिपु और इन्द्रियाँ सभी अच्छा-बुरा धनी, कोई दरिद्र, कोई अन्धा, कोई खंज, कोई उत्तम कुलमें और कोई नीच वंशमें जन्म ग्रहण क्यों करते हैं? कार्य करती हैं। राग करनेसे ही अनिष्ट होगा। कामना यह विषमता क्यों है? होनेसे ही प्राप्तिकी इच्छा होगी, लोभ करनेसे ही पर-इसका स्पष्ट प्रमाण—जिस जीवने जैसे-जैसे कर्म द्रव्य-अपहरणकी चेष्टा होगी, अहंकार होनेसे ही किये हैं, उनका भोग शेष न होनेतक उसे किये हुए दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन करना होगा आदि। जिसका जो कर्मफलके अनुसार बार-बार देह धारण करना पड़ता धर्म है, वह अपना कार्य करता ही है। इसलिये ब्रह्माने है। जो जन्मान्ध है, उसने इस जीवनमें कुछ भी नहीं मनुष्यको हिताहितका ज्ञान दिया है और सब जीवोंमें देख पाया, किंतु अन्य सब अच्छी तरह देखते हैं— श्रेष्ठ बनाया है। मृत्यु ही कभी शेष नहीं हो सकती। इसका क्या कोई कारण नहीं है? यदि मृत्यु ही शेष हो तो ईश्वरको प्रतिदिन संख्यातीत जान पड़ता है, यह कोई भी अस्वीकार नहीं करेगा आत्माएँ उत्पन्न करनेका कार्य करना पड़े तथा मनुष्यकी कि पूर्वजन्मके पापका फल-भोग ही इसका कारण है। अपेक्षा उसका यह गोरखधन्धा कितना ही अधिक बढ़ इस जीवनकी देह, आकृति, स्वभाव, ज्ञान आदि सभी जाय और जीवन कष्टमय हो जाय। पूर्वजन्मके कर्मफलके अनुसार ही बने हैं, जिसने जैसे देहके विच्छिन्न होनेपर भी आत्माका अपकार कर्म किये हैं, उसकी आकृति और स्वभाव ठीक उसी उसी प्रकार नहीं होता, जैसे घरके जलते रहनेपर भी प्रकारके बने हैं। जो चोरी करके जीवन व्यतीत कर रहा गृहके अभ्यन्तरस्थ आकाशकी कुछ भी क्षति नहीं होती। है, अगले जन्ममें उसकी आकृति और स्वभाव ठीक आत्मा हन्ता भी नहीं और हत भी नहीं।* द्वेष ही दस्युकी भाँति रूक्ष रहेंगे। जो धर्म-चर्चा करके जीवन संतापका मूल है, द्वेष ही संसारका बन्धन है और द्वेष व्यतीत कर रहा है, उसकी आकृति सौम्य और स्वभाव ही मुक्तिका प्रतिबन्धक है, अतएव यत्नपूर्वक द्वेषका अति कोमल होगा। परित्याग करो। सुख-दु:ख देहके नहीं हैं, आत्माके भी एक आदमी जीवनभर धर्म-चर्चा करके भी सुखी नहीं हैं। यद्यपि आत्मा वायुकी भाँति निर्मल और निर्लेप नहीं रहा, संसारमें नाना प्रकारके कष्ट उठाये और एक है, तथापि जीव ईश्वरकी मायासे मोहित होकर मैं सुखी आदमीने अति घृणित कार्य-लाम्पट्य अथवा दस्युवृत्ति हूँ, मैं दुखी हूँ—इस प्रकार अपने-आप ही समझता है। करके भी सुखसे जीवन व्यतीत किया-इसका स्पष्ट विश्वमोहिनी उस अनादि अविद्याका नाम ही माया है। प्रमाण पूर्वजन्म ही है। जिस व्यक्तिने धर्म-चर्चा या जन्मते ही जीवका उस अविद्या अर्थात् मायाके साथ धर्माचरण करके इस जीवनमें कष्ट पाया है, वह एक सम्बन्ध हो जाता है, इसीसे वह संसारमें बँध जाता है। समय अवश्य सुख-भोग करेगा। इस जीवनमें उसने जो बुद्धि-इन्द्रियादिके समीप अवस्थितिके कारण आत्मा निर्मल होनेपर भी तत्तत्-पदार्थके समगुण-सम्पन्न प्रतीत कष्ट पाया है, वह उसके पूर्वजन्मके बुरे कर्मका फल था, जिसके भोगका समय उपस्थित होनेसे कष्ट उठाना होता है। मन, बुद्धि और अहंकार जीवके सहकारी हैं। पड़ा और दूसरे आदमीके लिये सम्प्रति पूर्वजन्मके शुभ अपने किये हुएका फल अपनेको ही भोगना पड़ेगा अर्थात् जिसका जैसा कर्मफल है, उसे वैसा ही कर्म-फल भोगनेका समय उपस्थित हुआ, इसलिये उसने सुखसे जीवन व्यतीत किया, किंतु इसके बाद उसे बड़ा फल भुगतना होगा। फिर सृष्टिके समय जीव मन-* नायं हन्ति न हन्यते। (कठोपनिषद् १।२।१९ तथा गीता २।१९)

	-विचार क्रम्सम्बद्धम्
प्रभृतिके साथ सम्बन्ध लेकर देह-धारण करनेको बाध्य	परमाणु अविनश्वर हैं, अतएव भूतसमध्टिका भी विनाश
होता है। जबतक जीव मुक्त नहीं हो जाता, तबतक उसे	नहीं है। मृत-देह फिर उसी पंचभूतमें मिल जाती है।
इसी रूपमें भ्रमण करना पड़ता है। देह मनस्तापका मूल	जो मनुष्य आज तुम्हारे सामने विराजमान है, उसका
है, देह संसारका कारण है और कर्म-फलसे ही उस	शरीर पूर्वजन्ममें किस जीवके परमाणुओंद्वारा निर्मित
देहकी उत्पत्ति है। कर्म दो प्रकारका है—पाप और	हुआ है ? उस भूतपूर्व जीवके पुनर्जन्मका फल-रूप
पुण्य। उस पाप और पुण्यके अंशके अनुसार ही देहीको	तुम्हारे सम्मुखस्थ मनुष्य है।
ु सुख-दु:ख प्राप्त होते हैं। जितना पाप, उतना ही दु:ख	जो आत्मा जिस परिमाणमें पापसे निर्मुक्त है, जो
और जितना पुण्य, उतना ही सुख भोगना पड़ेगा। यह	आत्मा जिस परिमाणमें विषय-वासनासे शून्य है, वह
सुख-दु:ख दिन-रातकी भाँति परस्परसापेक्ष हैं और	आत्मा उसी परिमाणमें उन्नत है। धार्मिकका आत्मा
ु भोगके बिना इनका शेष नहीं होता।* भोग शेष हुए	पापात्माके आत्मासे बहुत उन्नत है। उस उन्नतिशील
बिना मुक्ति नहीं होती।	आत्माका वह उन्नत स्वभाव देह-त्याग करनेपर भी नष्ट
आत्मा शरीरमें कर्तारूप है। जिस वस्तुके जीव-	नहीं होता; प्रत्युत संसारकी जो कुछ वासना, जो एक
देहसे विच्छिन्न होनेपर जीवका जीवन नहीं रहता,	प्रवृत्ति थी, उसके बद्ध होनेपर आत्मा क्रमश: उन्नतिके
इन्द्रियादि फिर कोई कार्य नहीं कर सकतीं, वही वस्तु	पथपर चलने लगता है। आत्मा पुरुष और देह प्रकृति है।
जीवका आत्मा है। आत्माहीन देहको सुख-दु:ख कुछ	आत्मा जबतक प्रकृतिसे संयुक्त नहीं होता, तबतक निष्काम
भी अनुभव नहीं होता। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, ज्ञान कुछ	और निर्गुण अवस्थामें रहता है। प्रकृतिके मिलनेसे ही
भी नहीं रहता, अतएव यह निश्चय है कि आत्मा ही	उसकी इच्छा–प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और प्रकृतिसे पृथक्
देहका कर्ता है। सुख-दु:ख ज्ञानके द्वार-स्वरूप हैं।	होनेपर फिर वह पूर्ववत् स्वभाव अर्थात् निर्गुण और
आत्माको तिरस्कार या पुरस्कार देनेके लिये उस	निर्लिप्त-भावको प्राप्त होता है। इसका तात्पर्य यह है
आत्माके वासस्थल देहका प्रयोजन है। क्लेश एवं	कि आत्माकी जबतक प्रवृत्ति-वासनादि वर्तमान रहती है,
विषादका अनुभव शरीरकी सहायता पाये बिना आत्माको	तबतक वह पाप-देहका आश्रय लिये रहता है और
नहीं हो सकता। आत्मा एकाकी चला जाता है—देह	तभीतक वह सगुण, सर्वविषयोंसे लिप्त, वासनादिसंयुक्त
उसके साथ नहीं जाती, इसलिये आत्माको दण्ड देना	रहता है तथा देहका परित्याग करनेपर फिर पूर्वभावको
असम्भव है। प्रत्येक जीव-देहमें ईश्वर आत्मारूपसे	प्राप्त हो जाता है। आत्मा प्रथम निर्गुण होनेपर भी उसे
वर्तमान है। जीवात्मा परमात्माका अंश है। जैसे पाप	देहके आश्रयसे गुणसम्पन्न होना पड़ता है।
अनेक प्रकारके हैं, वैसे ही उनके दण्ड भी अनेक	पश्वादि-देहसे मनुष्य-देह लाभ करनेमें प्रकृति-
प्रकारके हैं। पुण्य भी अनेक प्रकारके और हर्ष भी अनेक	परिवर्तनके लिये अतिशय कष्ट और चेष्टा करनी पड़ती
प्रकारके हैं। अनुताप ही पापका प्रधान दण्ड और हर्ष	है। पशुसे मनुष्य होना जितना कठिन है, मनुष्य होकर
ही पुण्यका प्रधान पुरस्कार है। मनुष्यका हृदय पाप-	मनुष्यत्व लाभ करना उससे भी अधिक कठिन है।
पुण्यके निराकरणका तराजू है। पुण्यसे हर्ष और पापसे	मनुष्यसे देवता होना जितना कठिन है, मनुष्य होकर
अनुताप अपने-आप ही मनुष्यके हृदयमें उत्पन्न होकर	मनुष्यत्व लाभ करना उसकी अपेक्षा भी कठिन है। शुभ
उसके किये हुए कार्यका उपयुक्त पुरस्कार प्रदान करते	कार्यके अनुष्ठानद्वारा मनुष्य देवत्व प्राप्त कर सकता है;
हैं। इस दण्डको देखकर ही जो बुद्धिमान् हैं, वे स्वयं	किंतु अनायास प्रकृत मनुष्य नहीं हो सकता। समस्त
पापसे बचते हैं। पंचभूत केवल परमाणुसमष्टिमात्र है।	भोग और आशाका परित्याग किये बिना मुक्तिका द्वार
* नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। शरीरं सुखदु:खानां भोग प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय:।	॥यतनमुच्यते ।

नहीं खुलता। सकाम शुभ कार्योंके साधनद्वारा मुक्तिका हो जाती हैं। धार्मिकका आत्मा धर्म-बलसे क्रमश: पथ और भी दुर्गम बन जाता है। जीव देवलोकके उन्नत होकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है। यह ऐश्वर्य-भोगमें मत्त होकर भोगावसानमें मर्त्यलोकमें आनेके उन्नति एक महीने या एक वर्षमें नहीं होती। बहुत उपयुक्त हो जाता है। इसलिये महापुरुष देवधामकी समयतक प्रयत्न करनेपर मोक्षप्राप्ति होती है। इसी कामना नहीं करते। कारण, वह कर्मफलजन्य चिरस्थायी प्रकार पापीका आत्मा क्रमशः अधोगतिको पहुँचता नहीं है। प्रकृत मनुष्यत्व लाभ करनेके लिये सब इन्द्रियोंका है। स्वर्ग और नरक-वास अन्य कुछ नहीं है, केवल वेग संवरण करना होता है। रिपुवर्गका वशीकरण, आत्माकी उन्नति और अवनतिमात्र है। आत्माकी उन्नति अन्त:करणका विशुद्धीकरण, प्राणिमात्रमें समदर्शन, और अवनतिके साथ अवस्थान्तर-प्राप्तिके लिये उसका अभिमान-त्याग आदि मनुष्यत्वलाभ करनेके प्रधान उपादान नाना स्थानोंमें और नाना प्रकारसे जन्म होता है। इस हैं। इनके अतिरिक्त शम, दम, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा विशाल विस्तृत जगत्में किसने कहाँ, किस भावसे एवं उपरित*—ये कतिपय गुण भी मनुष्यमें होने चाहिये। पुनर्जन्म ग्रहण किया है, इसका अनुसन्धान नहीं होता, मनुष्यत्वलाभ हो जानेपर भी मुक्तिकी इच्छा सहजमें इसीलिये पुनर्जन्मपर जनसाधारण विश्वास नहीं करते। ही नहीं होती। विषय-भोगमें जितने दिनोंतक क्लेशकी पूर्वजन्म और परकाल हम देख नहीं पाते। पुनर्जन्म उपलब्धि नहीं होती, उतने दिनोंतक जीव महाजितेन्द्रिय प्राप्त हुआ है—इस प्रकार साक्षात्में आकर किसीने और योगीन्द्र होनेपर भी मुक्ति-लाभ नहीं कर सकता। बताया नहीं। केवल अनुमान और युक्तिद्वारा ही सिद्ध करके उसमें विश्वास करना पड़ता है। नहीं तो धर्माधर्म,

वासना-त्याग ही मुक्तिका मुख्य उपाय है। मुक्तिकी इच्छा पाप-पुण्य किसीमें भी भेद या पार्थक्य नहीं रहता। होनेसे ही मुक्ति-पद-लाभ होगा, यह बात नहीं है। महापुरुषोंका सदा संग न करनेसे मुक्तिका मार्ग दिखायेगा कौन? सत्पुरुषोंका सहवास जीवके लिये सौभाग्य-सापेक्ष है। इच्छा करनेसे ही साधु-दर्शन

जैसे नाविकसे नौका लेनी पड़ती है, उसी प्रकार

संसार-सागरसे पार होनेके लिये महापुरुषका सत्संग

पुनर्जन्ममें विश्वास रखनेके कारण ही और इसी भयसे कि फिर घोर यन्त्रणा भुगतनी पड़ेगी। इस जीवनमें कोई नहीं होता। संतलोग प्राय: निर्जन स्थानमें ही रहते विद्वान्, कोई मुर्ख, कोई पण्डित, कोई ज्योतिषी, कोई हैं। वे कभी दृष्टिगोचर हो जायँ तो भी सहजमें

उच्च श्रेणीका गायक और कोई वाद्ययन्त्र बजानेमें निपुण है, इसका कारण यही है कि पूर्वजन्ममें वह उस कलामें पहचाने नहीं जाते और यदि पहचाने जा सकें तो वे अपने निकट सम्पर्कमें रखना नहीं चाहते। निकटमें निपुण था, इस जन्ममें वही आत्मा है, केवल देहका प्रभेद है। यदि कर्मफल न होता तो अवश्य इतना भेद रहनेका अधिकार पा जानेपर भी उनके हृदयके भाव हम समझ नहीं सकते। नदीको पार करनेके लिये नहीं रहता। अच्छे-ब्रे कार्योंके लिये ही जीवको

लोग पाप करते हुए क्यों डरते हैं? केवल

विभिन्न अवस्थाओंमें गिरना पड़ता है। अच्छे कार्यसे

आत्माकी उन्नित (ऊर्ध्वगित) होती है और बुरा कार्य

िभाग ९६

करना आवश्यक है। सत्संगके द्वारा सभी बातें सुलभ करनेसे अवनित होती है।

* शमादिषट्कसम्पत्तिः—शमदमोपरतितितिक्षासमाधानश्रद्धाख्याः। शमः—श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनसो निग्रहः। दमः—बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्। निवर्तितानामेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्य उपरममुपरित:। तितिक्षा—शीतोष्णादिद्वन्द्वसिहष्णुता। निगृहीतस्य मनसः

श्रवणादौ तदनुगुणविषये च समाधि: समाधानम्। गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्ये विश्वास: श्रद्धा। (वेदान्तसार: १८। २५) अर्थात् शम—ईश्वर-विषयक श्रवण-मननके अतिरिक्त विषयोंसे अन्तरिन्द्रियोंका निग्रह, दम—श्रवणादि भिन्न विषयोंसे बाह्येन्द्रियका दमन,

उपरति—निवर्तित इन्द्रियोंका उनके अतिरिक्त विषयोंसे उपराम तितिक्षा—शीत-उष्ण आदि दृद्धोंका सहत, समाधन—ईश्वरविषयक श्रवणादिमें मुबकी Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha एकाग्रता एवं श्रद्धा—गुरु-वाक्य एवं वेदान्त-वचनमें विश्वास है।

संख्या ९] भगवानुसे सम्बन्ध (अपनापन) भगवान्से सम्बन्ध (अपनापन) (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) 🕸 मनुष्य सांसारिक वस्तु-व्यक्ति आदिसे जितना भक्ति है। अपना सम्बन्ध मानता है, उतना ही वह पराधीन हो जाता 🕏 भगवान् सर्वसमर्थ होते हुए भी हमारेसे दूर होनेमें है। अगर वह केवल भगवान्से अपना सम्बन्ध माने तो असमर्थ हैं। सदाके लिये स्वाधीन हो जाय। 🕸 भगवान् हमारे हैं, पर मिली हुई वस्तु हमारी 🔅 साधक अपनेको भगवान्का समझकर संसारका नहीं है, प्रत्युत भगवान्की है। काम करे तो संसारका भी काम ठीक होगा और 🔹 मनुष्य पदार्थीं और क्रियाओंको अपनी मानता भगवानुका भी। परंतु अपनेको संसारका समझकर है तो सर्वथा परतन्त्र हो जाता है और भगवान्को अपना संसारका काम करे तो संसारका काम भी ठीक नहीं होगा मानता है तथा उनके अनन्य शरण होता है तो सर्वथा और भगवानुका काम (भजन) तो होगा ही नहीं। स्वतन्त्र हो जाता है। 🕸 भगवान्के साथ हमारा सम्बन्ध स्वत:-स्वाभाविक 🔅 प्रभु अपने हैं, पर अपने लिये नहीं हैं, प्रत्युत है। इस सम्बन्धके लिये किसी बल, योग्यता, दूसरेकी हम प्रभुके लिये हैं। तात्पर्य है कि हमें प्रभुसे कुछ लेना नहीं है, प्रत्युत अपने-आपको उन्हें देना है और विपरीत-सहायता आदिकी जरूरत नहीं है। से-विपरीत परिस्थिति आनेपर भी उसको प्रभुका भेजा 🔅 अभी जैसे संसारका सम्बन्ध माना है, वह प्राप्त प्रसाद समझकर प्रसन्न रहना है। है, नजदीक है, वैसे ही परमात्माका सम्बन्ध मान लें और 🔅 सदुपयोग करनेके लिये ही वस्तु अपनी है, जैसे परमात्माका सम्बन्ध माना है कि वह अप्राप्त है, अपने-आपको देनेके लिये ही भगवान् अपने हैं। इसलिये दूर है, वैसे ही संसारका सम्बन्ध मान लें। वस्तुको संसारमें लगा दे और अपने-आपको भगवान्में 🕏 ऐसा मान लो कि मैं भगवान्का हूँ। अगर 'मैं संसारका हूँ ' ऐसा मानोगे तो संसारका काम दूर रहा, लगा दे। 🕸 पित मर सकता है, स्त्रीको छोड़ भी सकता है, भगवान्का भजन करते हुए भी भगवान्को भूल जाओगे। फिर भी नये घर जाते समय लड़कीको चिन्ता नहीं होती। s आप कैसे ही हों, अभी इसी क्षण मान लें कि परंतु भगवान् न तो कभी मरते हैं और न कभी छोड़ते 'मैं भगवानुका हूँ।' ही हैं, फिर भगवान्से सम्बन्ध जोड़नेपर किस बातकी 🔅 भगवान्का ध्यान करनेकी अपेक्षा उनमें अपनापन चिन्ता? भगवान्को पकड्ना तो आता है, पर छोड्ना करना श्रेष्ठ है। अपनापन होनेसे ध्यान अपने-आप होता आता ही नहीं। है। अपने-आप होनेवाला साधन श्रेष्ठ होता है। 🔹 'मैं भगवान्का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—इस 🕸 भगवान्को अपनापन जितना प्रिय है, उतने त्याग, अपनेपनके समान कोई भी योग्यता, पात्रता, अधिकारिता तपस्या आदि प्रिय नहीं हैं। आदि नहीं है। 🕸 परमात्माके सम्मुख होनेका उपाय है—संसारसे 🔹 भक्तको अपनी योग्यता आदिकी तरफ न देखकर सर्वथा विमुख होना। केवल भगवान्के अपनेपनकी तरफ ही देखते रहना 🔅 भगवान्के साथ दृढ़ अपनापन सम्पूर्ण दोषोंको चाहिये। खा जाता है। 🔅 भगवान्में अपनापन सबसे सुगम और श्रेष्ठ 😘 जबतक भगवान्का सम्बन्ध नहीं होता, तबतक सब लौकिक ही होता है। भगवान्का सम्बन्ध होनेसे सब साधन है। 🕸 भगवान्के सिवाय कोई मेरा नहीं—यह असली अलौकिक हो जाता है।

(श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा) बात कही है। परंतु काँटोंसे भरी उनकी वनयात्राको रावणके अत्याचारसे व्याकुल देवतागण अपने

'कस न होइ मगु मंगलदाता'

स्वार्थमें अन्धे हो रहे थे। इसीलिये सभी चाहते थे भगवान्ने सुखद और आनन्द प्रदान करनेवाली बना कि **'रामहि भरतहि भेट न होई'** धरती कठोर दिया है।

बनकर भरतजीके पथको कठिन बना देना चाहती

थी, सूर्य किरणोंसे संतप्त करके उन्हें चित्रकूटकी यात्रासे विरत करना चाहते थे। निषादराज भी भरतजीको

अपने आराध्य प्रभु श्रीरामका विरोधी जानकर घोषणा करते हैं कि हम गंगापार करनेसे पहले भरतको

युद्धसरिता और हमारे रुधिरकी सरितामें स्नान कराये बिना नहीं जाने देंगे। लेकिन भरतजीके शील-स्वभाव

और प्रेमकी रीतिको जानकर निषादराजको अपना निर्णय

बदलना पड़ा और श्रीराम-भरत-मिलनमें निषादराजकी

अहम भूमिका रही। श्रीभरतकी यात्रामें पहला अवरोध समाप्त हुआ।

भरतजी जब प्रयागराजमें प्रवेश करते हैं, तब

गोस्वामी तुलसीदासजीने मानसमें कहा कि भरतजीके चरणोंमें काँटे और कंकड़ चुभनेसे छाले ऐसे चमकते

हैं जैसे कमलकोशमें ओसके कण झलकते हैं। झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें॥

वनपथमें काँटे होना तो स्वाभाविक ही है। प्रभु श्रीराम भी वनमें चलते हैं तो काँटे उनके पाँवोंमें

चुभ जाते हैं। गोस्वामीजीने सीताजी अथवा लक्ष्मणजीके पाँवोंमें काँटे लगनेका वर्णन नहीं किया

है, केवल श्रीरामके चरणोंमें ही काँटोंके लगनेकी

भगवान्ने अपने अंशमेंसे पाँच तत्त्व-भूमि, गगन, वायु, अग्नि, जलका समावेशकर मानवदेहकी रचना की।

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥ हमारे मनीषियोंने इन पाँच तत्त्वोंको सदा याद रखनेके लिये भगवान्में आये पाँच अक्षरोंका विश्लेषण

इस प्रकार किया है—'भ' यानी भूमि, 'ग' यानी गगन (आकाश), 'व' यानी वायु (हवा), अ से अग्नि और न से नीर यानी जल।

भगवान् रामके नररूपमें अयोध्यामें प्रकट होने (जन्म लेने)-पर सभी कुछ अनुकूल हो गया। जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल। चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥

और श्रीरामजीकी वनयात्रामें भी ये पाँचों तत्त्व अनुकूल हुए। १-जहाँ-जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके चरण चले जाते

हैं, उनके समान इन्द्रकी पुरी अमरावती भी नहीं है। (पृथ्वीकी अनुकूलता) जहँ जहँ राम चरन चिल जाहीं। तिन्ह समान अमरावित नाहीं॥ २-श्रीराम पर्वत, वन और पशु-पक्षियोंको देखते

और देवता फूल बरसाते और सिहाते हैं। (गगनकी अनुकूलता) छाँह करिहं घन बिबुधगन बरषिहं सुमन सिहाहिं।

देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं॥ ३-भौरोंकी पंक्तियाँ बहुत ही सुन्दर गुंजार करती

हुए चले जा रहे हैं। रास्तेमें बादल छाया करते हैं

हैं और सुख देनेवाली शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा चलती रहती है। (वायुकी अनुकूलता)

गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहड़ सुख देनी॥ ४-श्रीरामके नामकी वन्दनामें तुलसीदासजीने उन्हें

अग्नि (कृषानु), सूर्य (भानु)और चन्द्रमा (हिमकर)-

संख्या ९] 'कस न होइ मगु मंगलदाता' का हेतु बताया है। तत्त्व भरतके अनुकूल हो गये। परिणामस्वरूप भरतजीका बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।। स्वागत प्रभु श्रीरामसे भी बढ़कर हुआ। १-भरतजीके लिये पृथ्वी कोमल हो गयी और वनमें प्रभु श्रीरामने सीताजीको समझाया कि जबतक मैं राक्षसोंका वध करूँ, तबतक तुम अग्निमें मार्ग मंगलका मूल बन गया। (पृथ्वीकी अनुकूलता) निवास करो और सीताजी प्रभुके चरणोंको हृदयमें धरकर देखि दसा सुर बरिसिंहं फूला। भइ मृदु मिह मगु मंगल मूला॥ अग्निमें समा गयीं। (अग्निकी अनुकूलता) २-बादल छाया किये जा रहे हैं, सुख देनेवाली तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥ सुन्दर हवा बह रही है। भरतजीके जाते समय मार्ग जैसा सुखदायक हुआ, वैसा श्रीरामचन्द्रजीके लिये भी नहीं जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभुपद्धरिहियँ अनल समानी।। ५-जिन तालाबों और निदयोंमें श्रीरामजी स्नान कर हुआ था। (गगनकी अनुकूलता) लेते हैं, देवसरोवर और देवनिदयाँ भी उनकी बड़ाई किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात। करती हैं। (जलकी अनुकूलता) तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥ जे सर सरित राम अवगाहिं । तिन्हिंह देव सर सरित सराहिं ॥ ३-ऋषि भारद्वाजके प्रभावसे भरतजी और अवधवासियोंके लिये बनाये गये निवास-स्थलपर भगवान् राम अपने स्वयंके दु:खसे दुखी नहीं होते, पर अपने भक्तोंको थोड़ा-सा कष्ट आता देखकर उनका वसन्तऋत् छा गयी और शीतल, मन्द, सुगन्ध तीन हृदय द्रवित हो जाता है। वैसे तो हर जीवको भगवान् प्रकारकी हवा बहने लगी। (वायुकी अनुकूलता) अपनी असीम कृपासे अनुग्रहीत करते हैं, फिर भी वे रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥ अपने भक्तोंका योग-क्षेम स्वयं वहन करते हैं। गीतामें ४-भरतजीके हृदयमें यही सोच है—असल दावाग्नि भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि जो अनन्य प्रेमी बस दहक रही है कि मेरे कारण श्रीसीताराम दुखी हुए भक्तजन निरन्तर मेरा चिन्तन करते हुए मुझ परमेश्वरको और बिना रघुनाथजीके चरण देखे मेरे जीकी जलन न निष्काम भावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन जायगी। करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ। आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिरु नाइ। देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥ अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ और श्रीरामके आश्रममें प्रवेश करते ही भरतजीके प्रेममूर्ति श्रीभरतके पैरोंमें फफोले पड गये, पर दु:ख और जलन मिट गये। (अग्निकी अनुकूलता) उनके मुखसे आहतक नहीं निकली। जो झलका पड़ करत प्रबेस मिटे दुख दावा। गया, वह फूटता नहीं है। झलकेका आधार श्रीभरत हैं ५-भरतजी कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते और पृथ्वी आधेय है। श्रीभरतकी विरह-अग्नि ही इस हैं। भरतजीने पाँच दिनमें सब तीर्थस्थलोंके दर्शन कर झलका रूपसे शोभित हो रही है। वह यदि फूट जायगा लिये। (जलकी अनुकूलता) तो सीताजीकी माता पृथ्वीदेवीको वह विरह-ज्वाला देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माझ। दु:ख देगी, अत: वह फूटता नहीं। भरत तो श्रीरामके प्यारे हैं और फिर उनके छोटे प्रयागराजमें देवताओं विशेषकर इन्द्रको भरतजीकी भाई हैं। तब भला मार्ग उनके लिये मंगलदायक कैसे श्रीरामके प्रति अनन्य भक्ति और अथाह प्रेमका अनुभव न हो ? तात्पर्य यह है कि जिसे श्रीराम प्रिय हैं, उसके होता है और भरतजीकी राहमें रुकावट डालना भूलकर लिये सब कुछ अनुकूल हो जाता है। उनकी सराहना करते हैं। प्रभु श्रीरामकी कृपासे पाँचों भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता॥

िभाग ९६ मृत्युका दर्शन (डॉ० श्री गो० दा० फेगडे) जाननेकी हठ करनेपर यमराजने कहा था, 'मृत्यु प्रभुका मनुष्य मर्त्य प्राणी है। भगवान् श्रीकृष्णजीने भगवद्गीतामें कहा है, 'जातस्य हि ध्रवो मृत्युर्ध्वं विधान है।' जन्म मृतस्य च' जो जन्मता है उसका मरना निश्चित भगवान् श्रीकृष्णजीने भगवद्गीतामें स्पष्ट कहा है, जो मरता है उसका जन्मना भी निश्चित है। (गीता है, 'शरीर नाशवान् है, परंतु आत्मा अमर है, यह आत्मा किसी कालमें भी न जन्मता है, न मरता है, न २।२७) यद्यपि मृत्यु निश्चित होती है, फिर उसका समय और स्वरूप किसीको भी ज्ञात नहीं होता। मारा जाता है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत अभीतक मृत्युका अनुभव बतानेवाला कोई पैदा नहीं और पुरातन है। इस आत्माको शस्त्रादि काट नहीं हुआ। मृत्यु जब होनी है और जैसी होनी है, वैसी होती सकते हैं और इसको आग जला नहीं सकती है तथा ही है, कोई भी डॉक्टर या अस्पताल उसे रोक नहीं इसको जल गीला नहीं कर सकते हैं और वायु इसे सकता। 'आया है सो जायगा राजा-रंक-फकीर' सुखा नहीं सकता है।' बस, इतना ही फर्क है, कि 'एक सिंघासन चढ़ि चले इस जीवात्माका कार्य क्या है? यह कर्मके एक बँधे जंजीर'। मृत्यु अटल है, फिर भी हर व्यक्ति अनुसार एक शरीरसे (योनिसे) दूसरे शरीरमें प्रवेश

अमर रहनेकी चाह रखता है, महाभारतका निम्न श्लोक इस वृत्तिका यथार्थ वर्णन करता है-अहन्यहिन भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्। शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतःपरम्॥ रोज-रोज प्राणी मरते हैं, फिर भी शेष लोग अमर रहनेकी इच्छा करते हैं, संसारमें इससे बड़ा आश्चर्य कौन-सा है?

अध्यात्मशास्त्रमें ही प्राप्त हो सकता है। सर्वसाधारण

मनुष्य स्थूल शरीरको ही 'मैं' समझता है, ऐसे देहात्मक

ज्ञानको अध्यात्मशास्त्रमें 'मिथ्याज्ञान' कहते हैं। उसका

सत्यज्ञान भगवान्द्वारा बताये हुए ब्रह्मविद्याशास्त्रमें ही

वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी तरह देहधारी जीवात्मा पुराना शरीर छोड़कर नये शरीरमें प्रवेश करता है।' इस तरह जन्म-मृत्युकी अखण्ड परम्परा मूल जन्म और मृत्यु एक ही सिक्केके दो पहलू हैं, सृष्टि रचनासे चली आ रही है। सृष्टिके रंग-मंचपर फिर भी मानवको न जन्मका ज्ञान होता है न मरनेका। किरदार आते हैं और जाते हैं, लेकिन सृष्टिका नाटक दृश्य शरीरसे (स्थूल शरीरसे) जीवके (चेतनाके) निकल जानेको हम मृत्यु कहते हैं, लेकिन वह जीवात्मा या चेतना कहाँसे आती है? और कहाँ जाती है? इसका रहस्य भौतिक विज्ञानको आजतक अज्ञात है,

मिलासुभाताकृपोन्नवस्तिकः यमर असर असर अस्ति इत्रुख्य विद्यालकः । असुसीर जीवातम् यनि प्रमासी करेता हुः भाषा

लगातार चलता है। मृत्युका मतलब क्या है ? क्या वही जीवनका अन्त है ? मृत्युके बाद पुनर्जन्म है या नहीं ? यदि है तो जीवात्मा कौन-सा देह धारण करता है ? उसे एक देहसे मनुष्यको पंचमहाभूतोंसे बना स्थूल देह ही ज्ञात होता निकालकर दूसरे देहमें कौन ले जाता है? इस तरहके है, परंतु स्थूल देहको क्रियाशील बनानेवाला सुक्ष्म देह अनेक रहस्यमय और जटिल सवाल अनादिकालसे (चेतना) ज्ञात नहीं होता। उसका ज्ञान केवल मानवको सता रहे हैं, उन गृढ़ और अनादिकालीन

सवालोंपर विभिन्न तत्त्ववेत्ताओंने अपने-अपने तर्कानुमानके

अनुसार परस्पर भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं, भारतीय दर्शनोंमें चार्वाक दर्शन छोड़ दिया जाय तो सब अपने-

अपने तरीकेसे पुनर्जन्मकी सम्मति देते हैं, अपने-अपने

करता है। पहला शरीर 'पूर्वजन्म' और दूसरा शरीर

'पुनर्जन्म' कहलाता है। पुनर्जन्मका (देहान्तरका) विषय भगवान् श्रीकृष्ण उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं कि

'जिस तरह मनुष्य पुराने वस्त्र उतार देता है और नये

संख्या ९] मृत्युक	। दर्शन २३

पुण्यके परिणामस्वरूप आत्मा एक योनिसे दूसरी योनिमें	ज्ञान मानव बुद्धिको तर्क-वितर्कके सहारे प्राप्त करना
(८४ लक्ष योनियोंमें) घूमती-फिरती है, ऐसी मान्यता	मुमिकन नहीं, वह ज्ञान सर्वज्ञ परमेश्वरको ही होता
है कि सत्कर्मसे (धर्माचरणसे) पुण्य और असत्कर्मसे	है। वह भगवान् श्रीकृष्णद्वारा कथित श्रीमद्भगवद्गीतामें
(अधर्माचरणसे) पाप होता है। परोपकारसे पुण्य और	उपलब्ध है, लेकिन वह पानेके लिये श्रद्धा होनी
परपीड़ासे (हिंसासे) पाप होता है। धर्माचरणसे ऊर्ध्वलोकमें	चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने खुद कहा है कि
(श्रेष्ठ योनिमें) और अधर्माचरणसे अध:लोकमें (निम्न	'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः' (गीता ४।३९) अर्थात्
योनिमें) पुनर्जन्म होता है। यदि आचरण धर्म और	तत्पर हुआ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है।
अधर्मके परे हो तो आत्मा जन्म-मृत्युके फेरोंसे मुक्त	भारतीय अध्यात्मशास्त्रने हजारों सालोंसे आत्मा, परमात्मा,
होती है, उस अवस्थाको हम 'मोक्ष' कहते हैं। परब्रह्म	सर्ग, प्रतिसर्ग, पुनर्जन्म, कर्मसिद्धान्त, विकारवृत्ति, मन,
परमेश्वरने कहा है कि मोक्षके बाद जीवात्मा परमानन्द	बुद्धि, अहंकार स्थूलशरीरके बाहरके चेतन जगत्का
और परमशान्तिको प्राप्त होती है।	अन्वेषण किया है।
जैनदर्शन परमेश्वरका अस्तित्व नकारता है, लेकिन	मानव-जीवन निश्चित श्वासोच्छ्वासोंका होता है,
जीवको नित्य समझता है। चार्वाकदर्शन पुनर्जन्म नहीं	सर्वज्ञ श्रीचक्रधर स्वामीजीने कहा है, ' <i>संसार हा दीर्घ</i>
मानता, उनके अनुसार वह केवल एक कल्पनामात्र	स्वप्न गा' (यह संसार दीर्घ सपनेकी तरह है)। यद्यपि
है 'यावत् जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं	मानवदेह नाशवान् है, वही 'ज्ञानदेह' होता है। मानवदेहमें
पिबेत्।' (जबतक जिओ सुखसे जीओ, कर्जा लेकर	ही मुक्तिका ज्ञान प्राप्त हो सकता है। अत: दुर्लभ
घी पीओ) ऐसा भौतिकवादी विचार चार्वाकने रखा	मानवदेहका उपयोग धर्मके आचरणके लिये करना
है। उनकी रायसे 'देहस्य नाशो मुक्तिः' (देहका	श्रेयस्कर है। कर्मके अनुसार फल मिलता है, वह फल
नाश ही मुक्ति है)। कुछ भौतिकवादी वैज्ञानिक भी	इस जन्ममें ही नहीं, अगले जन्मोंमें भी भुगतना पड़ता
आत्मा, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म नहीं मानते; लेकिन कुछ	है। धर्मका आचरण करनेके लिये शरीर और मनका
वैज्ञानिक और पाश्चात्य तत्त्वचिन्तकोंने पुनर्जन्मका विज्ञान	स्वस्थ होना आवश्यक है। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'
जाननेका प्रयास किया है। यूनानियोंमें सुकरात,	उक्तिको ध्यानमें रखते हुए आचार-विचार रखना
पायथागोरस, प्लेटो आदि तत्त्वचिन्तकोंने पुनर्जन्मको	समझदारीका काम है, सन्तोंने मनुष्य-देहको भगवान्का
अपने चिन्तनका एक महत्त्वपूर्ण विषय बनाया था।	मन्दिर कहा है। अस्वस्थ या मृत शरीरमें आत्मकल्याण
सुकरातने कहा था 'मेरी ऐसी धारणा है कि पुनर्जन्म	कैसे हो सकता है? इसलिये कहते हैं—
सत्य है और मृत शरीरका त्याग करनेके बाद जीवात्मा	यावत् स्वस्थमिदं देहं
फिर शरीर धारण करता है।' प्राचीन ईसाई धर्मके	यावन्मृत्युश्च दूरतः।
इतिहासमें भी (बाइबिलमें) पुनर्जन्मके बारेमें निर्देश	तावदात्महितं कुर्यात्
दिखते हैं। इस्लाम-धर्ममें पुनर्जन्म नहीं मानते, लेकिन	प्राणान्ते किं करिष्यसि॥
पाप और पुण्यके अनुसार स्वर्ग (जन्नत) और नर्क	जबतक शरीर स्वस्थ है, जबतक मृत्यु दूर है,
(जहन्नुम) मानते हैं। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रीआइन्स्टाइनने	तबतक ही जीव आत्मकल्याण कर सकता है, मृत्युके
स्वीकार किया है कि 'शरीरान्तर्गत चेतनाका स्पष्टीकरण	बाद क्या कर सकेगा? 'जान है तो जहान है' यह
करना पदार्थ विज्ञानशास्त्रके लिये आजतक सम्भव	कहावत सही है, तथापि देह एक साधन है, साध्य नहीं।
नहीं हुआ।' चेतनाका सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गुह्यतम सत्य	उसे साधन ही समझना चाहिये। उसमें माया-ममता नहीं

भाग ९६ \$ रखनी चाहिये, वही तो दु:खोंकी जड़ होती है। क्या हुआ? धनके पीछे भागनेवाले भ्रष्टाचारियोंको 'भोगवादी' लोग शरीरका उपयोग ऐशो-आरामके यह ध्यानमें रखना चाहिये-लिये करते हैं, इन्द्रियसुख क्षणिक होते हैं, यह जानते धनदौलत और हीरे मोती। हुए भी उनके पीछे भागते हैं, उन्हींमें दु:खके बीज बोये लेकिन याद रखो कफनमें जेब नहीं होती॥ हुए रहते हैं, यह भूल जाते हैं। आजके जमानेमें जीवनकी आसक्ति छोड़कर मृत्युका सहर्ष स्वागत बीमारियाँ, व्यसन, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, कलह, अशान्ति करना महानताका लक्ष्य है। ईसामसीह, सुकरात, सन्त आदि समस्याएँ भोगवादकी ही उपज हैं। कबीर, गुरु नानक, रमण महर्षि तथा हँसते-हँसते दूसरी तरफ 'निराशावादी लोग' जीवनको निरर्थक सुलीपर चढ़नेवाले स्वातन्त्र्यवीर महान् थे। इसलिये 'जियो तो ऐसे जियो कि सब कुछ समझकर आत्महत्या करते हैं, धर्मशास्त्रके अनुसार आत्महत्या निषिद्ध है। हिन्दू-धर्मके अनुसार आत्मघात तुम्हारा है और मरो तो ऐसे मरो कि तुम्हारा कुछ भी करनेवाला नरकमें जाता है, उसे मुक्ति नहीं मिलती। नहीं है।' ऐसा कहा जाता है कि '*अन्त मिति सो* संसारके सभी धर्म संयमसे जीनेकी कला सिखाते हैं। गिति'। भगवान् श्रीकृष्णने भी गीतामें कहा है— धर्मका मूल उद्देश्य ही स्वैराचार और भ्रष्टाचारपर अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्तवा कलेवरम्। अंकुश रखना है। यदि धर्मके नामपर ही हिंसा, अनाचार यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ और भ्रष्टाचार होता है तो फिर क्या है? इस संसारको (614) झुठा समझकर उससे भागना नहीं चाहिये और सच्चा जो पुरुष अन्तकालमें मेरेको ही स्मरण करता हुआ समझकर उससे लिपटना भी नहीं, कीचड़में रहनेवाले शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको कमलके फूलको तरह जीना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णजीने प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। मृत्युका शोक करना व्यर्थ बताया है, वही सत्य अपने अध्यात्मशास्त्रके अनुसार जीवात्मा परमेश्वरकी बेटेके मृत्युका शोक करनेवाली वृद्धाको भगवान् बुद्धने भक्तिसे ही जन्म-मरणके फेरोंसे मुक्त हो सकती है, 'जिस घरमें किसीकी मृत्यु न हुई हो, ऐसे घरसे थोड़ी सर्वज्ञ श्रीचक्रधर स्वामीजीने कहा है, 'इस जगत्में एक सरसों ले आ'—इस कथनद्वारा बताया था। परमेश्वरके अतिरिक्त किसी भी साधनद्वारा जीवात्मा मुक्त धर्म मनुष्यको 'जीना' तो सिखाता ही है, 'मरना' नहीं हो सकती।' मृत्यु तो किसी भी क्षण आ सकती है, यहाँ कल क्या होगा, किसने जाना? इसलिये भी सिखाता है। धर्माचरणसे व्याधिका नाश होकर मनुष्यको परमशान्ति और परमसुख मिलता है, इसलिये श्रीआदिशंकराचार्यने कहा है-मनुष्यको धर्मके अनुसार ही जीवन जीना चाहिये-नि:श्वासे न हि विश्वास: अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः। कदा रुद्धो भविष्यति। कीर्तनीयमतो बाल्याद् नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यः धर्मसंग्रहः॥ शरीर क्षणभंगुर है, वैभव भी शाश्वत नहीं, मृत्यु हरेर्नामैव केवलम्॥ कभी भी आ सकती है, अत: धर्माचरण करना श्वासका कोई भरोसा नहीं, वह कभी भी रुक (मनुष्यका) कर्तव्य है। आजके युगमें अधिकतर लोग सकती है। अत: बचपनसे ही परमेश्वरका नामस्मरण 'धर्मसंग्रह' की बजाय 'धनसंग्रह' के दीवाने होते हैं। करो। संत कबीरने भी कहा है, 'मन हरीसे मिले तो जिन्दगी-भर कमाया हुआ धन यहींपर छोड़कर खाली हरी मिले निश्शंक।' आखिरमें सारांश यह है कि हाथ मर जाते हैं। आखिरमें जगज्जेता सिकन्दरका 'स्मर नित्यं (परमेश्वरं) नियत: ।'

'रामहि केवल प्रेमु पिआरा' (श्रीसुरेशजी शर्मा) गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने बताया कि अगर माता सीताके प्रेमका वर्णन करनेके लिये गोस्वामी आप रामको पाना चाहते हो तो उसका आधार 'प्रेम' है। तुलसीदासजी कहते हैं—'गिरा अनयन नयन बिन् प्रेमके साथ उन्होंने 'केवल' शब्द जोड दिया है। अर्थात् *बानी।* कौन कवि वर्णनकर अपयशका भागी होगा केवल 'प्रेम' अर्थात् और किसी चीजकी जरूरत नहीं, अर्थात् लेखनी पूर्ण वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है। फिर किंतु यह ढाई आखरका 'प्रेम' शब्द बहुत कठिन है। यह भी सुन्दरकाण्डमें हनुमान्जी महाराजके मुखसे कहलवाया बड़े-बड़े ज्ञानियों और विद्वानोंको भ्रमित करता है और न है 'तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना।' यह कविका वाणी-समझनेपर गलत रास्तेपर ले जाता है। प्रेमतत्त्वको चातुर्य है। जनकपुरवासियोंको राम खूब प्रेम करते हैं एवं समझनेके लिये श्रद्धा एवं भक्तिकी आवश्यकता होती है। नगर-भ्रमणके बहाने दर्शन-सुख देते हैं। अपने शरणागत विभीषणको लंकापतिकी पदवी देते हैं। सबसे बडी बात यह मन एवं बुद्धिका नहीं वरन् हृदयका विषय है। जितने पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड, स्वाध्याय, भजन-अपने शत्रु खर-दूषन, रावण, मेघनाद, कुम्भकर्णको भी

'रामहि केवल प्रेमु पिआरा'

कीर्तन एवं ध्यान-धारणा हैं, इन सबका हेतु प्रेम प्रगट करना है। मुख्य तत्त्व या लक्ष्य 'प्रेम' है, बाकी तो साधनमात्र है। अब प्रश्न उठता है—प्रेम कैसे करें, किससे करें? क्या केवल रामसे प्रेम करें या रामके अनुसार करें ? अत: रामतक जानेके दो रास्ते हैं, एक रामतक जानेका सीधा रास्ता रामसे प्रेम करना है। दूसरा रास्ता रामने जिस-जिससे प्रेम किया, हम भी उस-उससे प्रेम करें तो रामतक पहुँच जायँगे। राम तीनों माताओंसे समान प्रेम करते हैं। इसीलिये चौदह वर्षके पश्चात् सर्वप्रथम माता कैकेयीके भवन जाते हैं एवं मान-सम्मान देते हैं। राम अपने पिता दशरथसे प्रेम करते हैं। राजा

लक्ष्मणके मूर्छित होनेपर कहते हैं—'मिलइ न जगत

संख्या ९]

दयाकर मोक्ष प्रदान करते हैं। यह प्रेमकी पराकाष्ठा है। अयोध्यानगरी, सरयूनदी एवं अयोध्यावासियोंके प्रति उनके प्रेमका कहना ही क्या? जब राम चौदह वर्षका वनवास काटकर आते हैं तो हर अयोध्यावासीके गले मिल प्रेम प्रकट करते हैं। यह रामका प्रेम है। '*अमित* रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥'(रा०च०मा० ७।६।५)और सबसे ज्यादा राम अपने भक्तसे प्रेम करते हैं। जिनमें शबरी, सुतीक्ष्ण, जटायु और हम सब हैं। जब रावण सीता माताका हरण कर ले जाता है तो राम पेड़-पत्ते, नदी-पर्वत, पशु-पक्षी सबसे रोते हुए पूछते हैं। 'हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥'यह रामका प्रकृतिके प्रति दशरथने रामसे नहीं कहा वन जाओ, पर पिताने वचन द्रवित प्रेम है। दे दिया है, अत: उस वचनकी रक्षाहेतु वन जाते हैं। राम भरत एवं शत्रुघ्नसे अथाह स्नेह करते हैं। छोटे भाई अगर इन सबको एक जगह इकट्ठा कर लिया जाय

तो चित्र बनता है 'सीय राममय सब जग जानी।

सहोदर भ्राता।' अपने भक्त एवं सेवक हनुमान्के लिये करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'(रा०च०मा० १।८।२) वे कहते हैं, '**तुम मम प्रिय भरत सम भाई।**'तुम मुझे अर्थात् रामकी तरह प्रेम करना यानी अखिल विश्वके भरतके समान प्यारे हो। सुग्रीव रामके सखा हैं, उनके कण-कणसे अर्थात् अपने परिवार, मित्र, सेवक, समाज, लिये रामने कहा है, 'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। राष्ट्र एवं अखिल ब्रह्माण्डसे प्यार करना है। यही तिन्हिह बिलोकत पातक भारी॥' भगवान् केवटके रामराज्य है। वैसे रामको प्रेम करना और रामकी तरह प्रति स्नेह प्रकट करते हैं। निषादराजको बराबर बिठाते प्रेम करना, दोनों रास्ते एक ही बिन्दुपर मिलते हैं, चाहे हैं। जाम्बवानुको आदर देते हैं। कहींसे यात्रा प्रारम्भ करें।

बड़ी दुस्तर है प्रभुकी माया (श्रीताराचन्दजी आहूजा) सृष्टिमें तीन तत्त्व हैं-ब्रह्म, जीव और माया। ब्रह्म मनुष्योंमें नीच, दूषित कर्म करनेवाले मूढ लोग मुझको सर्वोच्च शक्ति है, जबिक जीव और माया इन दोनों नहीं भजते। परिणामस्वरूप ऐसे अज्ञानी जीव बार-बार

शक्तियोंका उद्भव ब्रह्मशक्तिसे हुआ है। गीतामें भगवान् जन्म-मृत्युको प्राप्त होकर युगों-युगोंतक भवसागरमें

कहते हैं कि मेरे द्वारा निर्मित मायाशक्ति तथा प्रकृति गोते लगाते रहते हैं और दु:खको प्राप्त होते रहते हैं। त्रिगुणात्मक भावोंसे भासित है अर्थात् सत्त्व, रज एवं तम अस्तु, आत्यन्तिक दु:ख-निवृत्ति और परमानन्द-प्राप्तिके

गुणोंसे युक्त है। तीनों गुण ही सारे संसारको मोहितकर समूचे प्राणी-समुदायको अपनी अँगुलियोंपर नचाते रहते

हैं, इसीलिये जीव इन तीनों गुणोंसे परे मुझ अविनाशीको

नहीं जानता। परमात्माद्वारा निर्मित होनेके कारण माया-शक्ति अतिशय शक्तिशाली है, अतः इसे पार करना

जीवके लिये सहज और सरल नहीं है। जबतक मायारूपी भवसागरको पार नहीं किया जाता, तबतक परमतत्त्वतक नहीं पहुँचा जा सकता। भगवान् श्रीकृष्णने

गीतामें स्वयं कहा है कि यह मेरी अलौकिक और अति अद्भृत त्रिगुणमयी माया बड़ी दुस्तर है, असाध्य है— **'मम माया दुरत्यया'** साथ ही यह भी कहा है कि जो पुरुष मुझे अनन्य भावसे निरन्तर भजते रहते हैं, वे

इस मायाको पार कर जाते हैं और मुझको प्राप्त कर लेते हैं।

दैवी होषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

न देख पाना ही माया है। माया जीवका ज्ञान हर लेती है; क्योंकि वह पदार्थोंको मिथ्यारूपमें दर्शाती है और उन्हें निम्नतर रूप प्रदान करती है। माया हमारी बुद्धिको,

हमारे बोधको चकरा देती है, जिसके कारण असली वस्तु नकली दिखायी देने लगती है। हमारे मानस-पटलपर देह, इन्द्रियाँ, बुद्धि एवं अहंकारका आवरण छा

मायाका अर्थ है अज्ञान, अविद्या यानी वास्तविकताको

जानेसे हम परमसत्ताको पहचान नहीं पाते हैं। भगवान्ने

गीतामें कहा भी है कि मायाके द्वारा जिनका ज्ञान हरा

सकेगा।

लिये दो बातोंको समझना अनिवार्य है-प्रथम मायाके स्वरूपको सही-सही पहचानना अर्थात् अविद्याको जानना और दूसरा परमात्मसत्ताको पहचानकर उसके प्रति दृढ्

अनुरक्तिका भाव रखते हुए उसीकी शरणमें चले जाना। यदि हम यह जान जायँ कि वही परमसत्ता हमारे अन्दर विद्यमान है तो हम त्रिविध गुणोंके भावोंसे मोहित नहीं होंगे और हमारे सभी कर्म भगवत्-कर्म ही होंगे।

हमारी दूसरी भ्रान्ति जो परमात्माके निरन्तर भजन करनेसे सम्बन्धित है, वह भी हमें परमतत्त्वतक पहुँचने

है। इसमें वाणी कीर्तन करती रहती है और तालके साथ भजन गाये जाते हैं। भगवान्को रिझानेका उपक्रम किया

प्रकारका देहाभ्यास ही है, इसे भक्ति नहीं कहा जा सकता। भक्ति तो भावकी भूमिसे अवतरित होती है, जिसमें मन और बुद्धिका समर्पण आवश्यक होता है।

सबसे पहले तो भ्रान्तियोंसे मुक्ति पानेका उपाय करना होगा, तभी दुस्तर मायासे पार जानेका मार्ग प्रशस्त हो जिमां भारता है कि उन्तर्भ देश भारति कि से पिक्स का प्रमुखे harma कि सिन्तर के प्रमुखे पिक्स के प्रमुखे कि प्र

नहीं देती। परमात्माके भजनको अधिकांश लोग कर्मकाण्डतक ही सीमित मान लेते हैं। वस्तुत: परमतत्त्व तो आदर्श गुणोंका समुच्चय है। उसके गुणोंको आत्मसात्

करनेका निरन्तर अभ्यास ही उसका भजन है। आज जो

अध्यात्म एवं भजनके नामपर विडम्बना छायी हुई है, वह वास्तवमें भजनका छद्म रूप ही है। आजकल फैशन-भक्तिका प्रचार-प्रसार बडे जोर-शोरसे चल रहा

िभाग ९६

जाता है फिल्मी रागों और हाई-फाई संगीत उपकरणोंसे,

परंतु उसमें भावका सर्वथा अभाव रहता है। यह तो एक

संख्या ९] बड़ी दुस्तर है प्रभुकी माया ********************** मेरी ही है। वस्तुत: भगवान्की माया प्रकृतिका एक हैं, आप ही राज्य ले लें और चक्रवर्ती बन जायँ। हमें प्रकारसे विकार ही है, जो आवरणके रूपमें हमारी तो अपनी तपस्या ही प्रिय है।' भरत सोचने लगे कि क्या चक्रवर्ती राज्य इसलिये पाया था कि भाईसे विमुख होना बुद्धिके चारों ओर बुन दिया गया है। महापुरुषोंके अनुसार संसारकी प्रत्येक वस्तु जो हमें भगवान्से दूर पड़े। सारा वैभव पानेके बाद भी मनमें असन्तोषकी लहर ले जाती है, वह मायाका ही रूप है। यह सात्त्विक उठती रही। साथ ही छोटे भाईसे पराजित होनेका दु:ख है, राजसिक है और तामसिक है। महर्षि अरविन्दजीका भी कहीं-न-कहीं मनको उद्विग्न कर रहा था। इस कथन है—यह ताना-बाना ईश्वरद्वारा बुना गया है, उद्विग्नतासे मुक्ति पानेके लिये भरतने भी राज्य छोड़ दिया और तप करनेके लिये वनको प्रस्थान किया। परा-प्रकृति इस बुनावटके मूलमें है। इसके एक-एक धागेमें छिपी है। हमें इसका उपयोगकर और इसे पीछे उधर बाहुबली भी बड़े अशान्त थे। राज्य सौंपकर छोड आगे बढना है, देवाधिदेवसे साक्षात्कार करना तप भी कर रहे थे, परंतु मन शान्त नहीं था। पिता है। उसका तरीका एक ही है, जिसकी चर्चा भगवान् ऋषभदेवसे मनकी अशान्तिका कारण पूछा। पिताके आदेशपर बाहुबलीकी सगी बहनने समझाते हुए कहा—

श्रीकृष्णद्वारा गीतामें की गयी है—'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।' अर्थात् जो मेरी ओर मुड़ते हैं। भावसे मेरा भजन करते हैं, वे इस मायाको पार कर जाते हैं। त्रिगुणमयी माया कैसी होती है, इसे एक सुन्दर पौराणिक उदाहरणद्वारा समझा जा सकता है। ऋषभदेव सनातन संस्कृतिमें चौबीस अवतारोंमेंसे एक अवतारके रूपमें माने गये हैं। जैन तीर्थंकरोंमें वे प्रथम तीर्थंकरके

रूपमें पूजे जाते हैं। उनके दो पुत्र थे-भरत और बाहुबली। भरत बड़े थे और बाहुबली छोटे। भरतके हिस्सेमें बडा राज्य आया, जबिक तपस्वी होनेके कारण बाहुबलीने छोटे राज्यसे सन्तोष कर लिया। भरत चक्रवर्ती सम्राट् बनना चाहते थे। उन्होंने सारे भारतको जीतकर इस आशयका शंखनाद कर दिया। बाहुबलीके राज्यमें प्रवेश करनेपर उनका रथ द्वारपर ही यह कहकर रोक दिया गया कि जबतक बाहुबलीका राज्य जीत नहीं

बहनकी बातपर गम्भीरतासे विचार किया, वे ध्यानस्थ हुए और कैवल्य ज्ञानको प्राप्त हो गये। यही भगवान्की दुरत्यया माया है। पहले इसी मायाने भरतको तमोगुण-रजोगुणके झंझावातोंमें डाला और फिर इसी मायाने बाहुबलीको भी सत्त्वगुणके क्षेत्रमें घेर लिया। अन्ततः वे भी प्रभुपरायण होनेके बाद इस मायासे पार हो गये। वस्तुत: क्रीड़ारत माया ही मन है। मनको जीतना ही मायाको जीतना है। ध्यानमें जैसे ही मनको लाँघ लिया जाता है, मायाकी क्रीड़ा समाप्त हो जाती है और

'तुम राज्य, वैभव और ऐश्वर्य छोड़कर रजोगुणको तो

पार कर गये हो, पर सात्त्विकताका अहंकार छोड़ना

अभी बाकी है। तुम्हारे बड़े भैया भरतजी सब कुछ

छोड़कर तम-रज-सत्रूपी मायाके सभी अवरोधोंको

पारकर कैवल्य ज्ञानको प्राप्त हो गये हैं।' बाहबलीने

परमतत्त्वकी अनुभूति होने लगती है। गीतामें भगवान्ने लिया जाता, तबतक वे चक्रवर्ती सम्राट् कहलानेके कई स्थानोंपर कहा है—'मामेकं शरणं व्रज', 'मामेव अधिकारी नहीं हैं। तब भरत अनुज बाहुबलीके पास गये ये प्रपद्यन्ते', 'मन्मना भव मद्भक्तो' इत्यादि। इन और उनसे अपनी सत्ताको मान लेनेका आग्रह किया, सबका आशय यही है कि भगवानुका भजन किये बिना लेकिन वे नहीं माने। तब दोनोंमें मल्लयुद्ध हुआ, जिसमें मुक्ति नहीं मिलेगी। वस्तुत: मायापर विजय प्राप्त बाहुबली विजयी हुए। विजयी होकर भी बाहुबलीने करनेकी एकमात्र रामबाण औषधि है—प्रभुकी शरणागति राज्यका परित्याग कर दिया। भरतसे बोले—'आप बड़े और भावपूर्ण भक्ति। इसका कोई विकल्प नहीं है।

पर्यावरण-प्रदूषण—समस्या और समाधान

(श्रीमिथिलेश कुमारजी शुक्ल)

भाग ९६

उपजाऊ मिट्टीका कटाव नहीं होता था, परंतु वन-कर्तन

हो जानेसे वर्षाकी बूँदें सीधे नग्न पृथ्वीपर टकराने लगीं;

जिससे भूमिकी ऊपरी उपजाऊ मिट्टी भी कटकर

जलके साथ बह गयी। वृक्षोंकी जड़ें वर्षा-जलको

सोखती थीं, वह कार्य रुक गया, जिससे भूमिगत जलमें

कमी आयी तथा पीने एवं सिंचाईयोग्य भूमिगत जल कम

होता गया। वृक्षोंकी जड़ें भी मिट्टीको बाँधकर रखती

थीं, वह पकड़ ढीली होनेसे मुदाक्षरण एवं अपरदन बढ़ने

लगा। यही कटी हुई मृदा वर्षा-जलके साथ बहकर

नदियोंमें पहुँचने लगी तथा नदियोंकी तलहटीमें भरने लगी, जिससे निदयोंकी गहराई कम होने लगी, जिससे

निदयोंके जल ढोनेकी क्षमता कम हो गयी तथा

निदयोंका पेटा मृदा (मिट्टी)-से भर जानेके कारण

बाढ़की समस्या भी उत्पन्न होने लगी। उधर कृषियोग्य

उपजाऊ मिट्टी अपरदनसे कट जानेके फलस्वरूप मिट्टीकी उपजाऊ क्षमतामें भी कमी आयी, फलत:

मनुष्यने उत्पादकता बढ़ानेके लिये पर्यावरणके लिये

घातक रासायनिक खादोंका प्रयोगकर मिट्टीकी उपजाऊ

शक्ति बढ़ायी, जिससे पर्यावरणका भारी क्षरण हुआ।

पैमानेपर उद्योग लगाये, परंतु उनसे निकलनेवाले कार्बन

तथा अन्य हानिकारक गैसोंके निस्तारण एवं शोधनहेतु

कोई उपाय नहीं किया। इससे शुद्ध वायुमण्डलमें कार्बन-

डाईऑक्साइड (CO2)-की मात्रा बढ़ी है। इससे

पर्यावरणके लिये घातक अन्य हानिकारक गैसोंका भी

उत्सर्जन हुआ है। बढ़ते परिवहनके साधनोंसे वायुमण्डलमें

मनुष्यने अपने जीवन-स्तरमें सुधारके लिये बडे

आज फैला चहुँ दिशाओं में बड़ा परिताप जबसे मानवने बढती जनसंख्याके भरण-पोषणके

लिये कृषिहेतु जंगलोंका कटाव प्रारम्भ किया, तभीसे यह प्रदूषण है मनुज के लोभ का अभिशाप।

दौड़ जो आगे निकलने की है अंधाधुंध

पर्यावरण-प्रदूषणकी समस्याका प्रारम्भ हुआ। जंगल

है वही फैला रही वातावरण में धुंध॥

काटनेसे पृथ्वी नग्न हो गयी, जिसके अनेक दुष्परिणाम

हुए। वर्षाकी बूँदें पहले वृक्षोंपर गिरती थीं एवं वृक्षोंके

आज भौतिक लालसा में मनुज अतिशय लिप्त

दूर है पर्यावरण से आज सारा विश्व।

जलके स्वरूपमें उतरती थीं, ऐसी स्थितिमें पृथ्वीकी प्रगति की जो दौड़ अंधी, सभी भागीदार

इसीसे हो रहा पर्यावरण संहार॥

पर्यावरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है। आज

प्रत्येक मनुष्य दैनिक जीवनमें पर्यावरण-प्रदूषणकी समस्यासे

दो-चार हो रहा है। स्वस्थ और स्वच्छ पर्यावरण

मानवके शारीरिक-मानसिक विकासके लिये अत्यधिक

आवश्यक है, परंतु आधुनिक विकसित मानवको स्वच्छ

वायु, स्वच्छ जल तथा प्रदूषणरहित पृथ्वीका साथ नहीं

मिल पा रहा है, जिससे मनुष्यको अनेक शारीरिक तथा

था, तभी तो उन्होंने आम, पीपल, नीम एवं बरगदके वृक्षोंमें देवताओंका निवास मानकर इन वृक्षोंकी सुरक्षा

स्निश्चित कर दी थी। यही नहीं, इन वृक्षोंकी जडोंमें

प्रतिदिन जल देनेको पुण्य कार्य माना गया था, परंतु

आज इसके वैज्ञानिक एवं पर्यावरणीय महत्त्वको देखते

हुए प्रत्येक व्यक्तिके लिये यह बात जाननेयोग्य है कि वृक्षोंको सूखनेसे बचानेके लिये इन्हें प्रतिदिन जलसे

सींचना आवश्यक है। आज इस बातकी पुष्टि हो चुकी

है कि पीपल तथा नीमके वृक्ष पर्यावरणकी दृष्टिसे

सर्वाधिक अनुकूल हैं तथा इनसे सर्वाधिक प्राणवाय

(ऑक्सीजन) प्राप्त होती है। भगवान् कृष्णने भी गीतामें

कहा है कि 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्' अर्थात् मैं सभी

वृक्षोंमें पीपलका वृक्ष हूँ। इस प्रकारसे पर्यावरणकी

शुद्धताके लिये सभी व्यक्तियोंको पीपलके पेड़में भगवान्

कृष्णके स्वरूपका दर्शन करते हुए अपने जीवनमें एक

पीपलके वृक्षका अवश्य रोपण करना होगा।

हमारे पूर्वजोंको पर्यावरणका महत्त्व भलीभाँति पता

मानसिक समस्याओंका सामना करना पड़ रहा है।

पत्तों, टहनियों और तनेके सहारे धीरे-धीरे पृथ्वीपर

संख्या ९] पर्यावरण-प्रदूषण—ः	समस्या और समाधान २९
<u>*************************************</u>	
कार्बन-मोनो-ऑक्साइड आदि अन्य विषैली गैसोंकी	विश्वके पर्यावरणको गुणवत्तामें भयंकर ह्रास हुआ है।
मात्राके साथ-साथ कार्बनकी मात्रा भी बढ़ी है; क्योंकि	यदि हम इस समस्याके समाधानकी बात करें तो
इन वाहनोंमें डीजल, पेट्रोल आदिका अधिकाधिक प्रयोग	'सादा जीवन–उच्च विचार' रखकर ही पर्यावरणको शुद्ध
हुआ है। वायुमण्डलमें कार्बन-डाई-ऑक्साइडकी मात्रा	रखा जा सकता है। प्रत्येक मनुष्यको अपने जीवनमें
बढ़ जानेसे तापमानमें निरन्तर वृद्धि होने लगी, जिससे	पर्यावरणके अनुकूल वृक्षोंका रोपण करना होगा। राह-
ध्रुवीय क्षेत्रोंकी बर्फ पिघलनेसे जल-प्रलयका खतरा	चलते कूड़ा-कचरा इधर-उधर न फेंक करके उचित
मॅंडराने लगा है। नगरीकरणमें वृद्धिके कारण महानगरोंका	निर्धारित स्थानपर ही डालना होगा। अपने आस-पास
गन्दा जल नदियों एवं समुद्रमें उड़ेला जाने लगा, जिससे	जितने वृक्ष हैं, उनकी सुरक्षा एवं उनके संवर्धनका ध्यान
जलमें प्रदूषण फैलने लगा, नदियोंका जल पीने तथा	रखना होगा। ऐसी व्यवस्था करनी है, जिससे उद्योगों एवं
नहानेलायक भी नहीं बचा है। यहाँतक कि अपने देशकी	वाहनोंसे कम-से-कम कार्बन एवं अन्य विषैली गैसोंका
सबसे पवित्र गंगा नदीका जल भी आज अत्यधिक प्रदूषित	उत्सर्जन हो। वायु तथा सौर ऊर्जाके अधिकाधिक प्रयोगसे
हो चुका है। जिस अमृततुल्य जलमें कीटाणु नहीं पड़ते	हम पर्यावरण-प्रदूषणकी मात्राको काफी कम कर सकते
थे, उस जलमें अत्यन्त प्रदूषण फैल चुका है। कानपुर	हैं। आज हमारी सरकारकी प्राथमिकतामें पर्यावरण-संरक्षण
आदि कई स्थानोंपर तो गंगाका पारिस्थितिकी तन्त्र इतना	एवं संवर्धन प्रमुखतासे शामिल है तथा उनके द्वारा पर्यावरणके
कातिल हो चुका है कि वहाँकी मछलियों एवं अन्य	हितके लिये अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं।
जलीय जीवोंको भी भारी खतरा उत्पन्न हो चुका है।	भारत सरकारने गंगाकी सफाईके लिये अलग मन्त्रालय
इस प्रदूषणका एक कारण और भी है कि गंगा आदि	बनाकर तथा एक नियत समयमें गंगाको स्वच्छ करनेका
नदियोंपर बड़े-बड़े बाँध बनाकर उनका जल रोक लिया	संकल्प लेकर पर्यावरण-प्रेमियों एवं माँ गंगासे अगाध
गया है, जिससे आगे निदयोंके जलमें कमी हो गयी तथा	श्रद्धा रखनेवाले लोगोंमें नयी ऊर्जाका संचार किया है।
नदी-जलका प्रवाह कम हो जानेसे प्रदूषणने और भी	गंगाके संरक्षणहेतु किये जा रहे इस प्रयासकी सफलताके
विकराल स्वरूप धारण कर लिया है।	लिये देशके जनमानसको अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे इस योजनासे
इसके अलावा ध्वनि-प्रदूषणकी मात्रा भी निरन्तर	जुड़ना होगा। उत्तर प्रदेश तथा अन्य कई राज्य सरकारोंद्वारा
बढ़ रही है। ध्वनि-प्रदूषणके कारण मानवकी एकाग्रतामें	वृक्षारोपण एवं वन्य-जीव-संरक्षणके क्षेत्रमें अधिकाधिक
कमी हो जाती है।	कार्य करके पर्यावरण-संरक्षणका महत्त्वपूर्ण कार्य किया
प्रदूषणका सबसे महत्त्वपूर्ण स्वरूप सांस्कृतिक	जा रहा है, पर आवश्यकता है जनचेतना और जन-
प्रदूषण भौतिकवादकी चरम परिणतिके कारण है।	सहभागिताकी। अन्तमें मैं अपने स्वरचित छन्दके माध्यमसे
वस्तुत: सांस्कृतिक प्रदूषण पूरे मानव-समुदायको अपने	समाधान देते हुए लेखको विराम देता हूँ—
आगोशमें ले चुका है। चरम स्वार्थपरता, धन-संग्रहकी	बंजर जमीन खाली देश में पड़ी हुई जो
असीम हवस, शुद्ध चिन्तनमें कमी, राजनीतिमें हिंसा,	उसमें भी वृक्षों की हरीतिमा बिछी रहे।
युवावर्गमें नशेकी लत, समाजमें बढ़ता भ्रष्टाचार,	एक-एक भूमि में लगा के वृक्ष योजना से वृक्षों की सुरक्षा की भी लालसा दिखी रहे।
साम्प्रदायिकताके कुचक्र तथा जातिवादके जहरने भी	पीपल-पलाश नीम पाकड़ के वृक्ष घने
भारतके सामाजिक-सांस्कृतिक प्रदूषणको बढ़ाया है।	सारे देश-भूमिमें उमंगमें खड़े रहें।
इससे आपसी प्रेम-व्यवहार एवं भाईचारेका भी क्षरण	ऐसा संकल्प हो कि बंजर रहे न कहीं
हुआ है। इन्हीं कारणोंसे आज न केवल भारतके वरन्	हरी भूमि, हरे वृक्ष, जीवन हरा रहे॥
	

भगवान् श्रीकृष्णका उद्धवको ज्ञानोपदेश [श्रीमद्भागवतके अन्तर्गत आयी भिक्षुगीतापर आधारित एक बोधकथा] (श्रीअर्जुनकुमारजी बन्मल) भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजीके संग अपने महलके व्यक्ति था। बात-बातपर क्रोध करना तो जैसे उसका निजी कक्षमें विराजमान हैं। इस संसारमें दुष्टजनोंके स्वभाव ही बन गया था। वह सदैव ही अपने प्रियजनों

व्यवहारका मानव जीवनपर प्रभाव और उससे मुक्तिके उपायपर चर्चा चल रही है। श्रीकृष्ण कहने लगे— बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वे दुर्जनेरितै:।

दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः॥

(श्रीमद्भा० ११। २३। २)

हे देवगुरु बृहस्पतिजीके शिष्य उद्भव! इस जगत्में

ऐसे सन्त पुरुष दुर्लभ हैं, जो दुष्टोंकी कटू वाणीको सहन कर सकें।

न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाणैः सुमर्मगैः। यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः॥

मानव-हृदय मर्मभेदी बाणोंके प्रहारसे उतने कष्टका अनुभव नहीं करता, जितनी पीड़ा दुर्जनोंकी अप्रिय वाणी

पहुँचाती है। महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव। कथयन्ति

तमहं वर्णियष्यामि निबोध सुसमाहितः॥ हे उद्भव! इस विषयमें सन्तजन प्राचीन इतिहासका वर्णन सुनाया करते हैं, मैं वही कथा तुम्हें सुनाता हूँ—

एक भिक्षकने दृष्ट प्रवृत्तिके लोगोंद्वारा अनेक प्रकारसे प्रताड़ित किये जानेपर भी अपने धैर्यको नहीं छोड़ा। उसने अपने पूर्वजन्मोंके कर्मींका फल

समझकर इसे हृदयसे स्वीकार किया। इस व्यथा-

कथाको ध्यानसे सुनो। अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया।

वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः। शुन्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः॥

प्राचीनकालकी बात है, उज्जैन नामकी नगरीमें एक ब्राह्मण रहता था। उसने अपने बुद्धि-चातुर्यसे खेती और व्यापारके माध्यमसे विपुल धनराशि एकत्र कर ली एवं अन्योंसे अप्रिय वाणी बोलता था। उसने अपने अतिथियोंका जलपान आदिसे कभी भी आदर-सत्कार नहीं किया। उसके आवासमें कभी भी कोई धार्मिक

अनुष्ठान नहीं हुआ। उसके अपने शरीरको भी उसकी धन-सम्पदासे कभी सुख नहीं मिला। दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यन्ते पुत्रबान्धवाः।

दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन् प्रियम्॥ तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः। धर्मकामविहीनस्य चुकुधुः पञ्चभागिनः॥ उसके कंजूस और अप्रिय व्यवहारके कारण बेटे-

बेटी, भाई-बहन, सेवक और उसकी पत्नी आदि समस्त

परिजन उससे इतने क्षुब्ध रहते थे कि वे सदैव उसके अनिष्टकी कामना किया करते थे, परिवारमें उसका कोई भी हितैषी नहीं था। वह लोक और परलोक दोनोंमें हीन दृष्टिसे देखा जाने लगा। वह केवल यक्षोंकी भाँति धनकी रखवाली

करता था। उस धनका प्रयोग न तो वह धर्मकार्यमें करता था और न ही उसका भोग करता था। इस प्रकारका जीवनयापन करनेके कारण पंचमहायज्ञके देव विपरीत हो गये। इन देवोंके तिरस्कारसे उसके पूर्वजन्मके

पुण्योंके प्रतापसे जो धन एकत्रित हुआ था, वह धीरे-

धीरे नष्ट हो गया।

ज्ञातयो जगृहुः किञ्चित् किञ्चिद् दस्यव उद्भव। दैवतः कालतः किञ्चिद् ब्रह्मबन्धोर्नृपार्थिवात्॥ स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः। उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्तामाप दुरत्ययाम्॥

उस नीच ब्राह्मणका कुछ धन उसके परिजनोंने दबा लिया, कुछ चोर ले गये, कुछ दैवी प्रकोपसे

आगमें जलकर नष्ट हो गया। कुछ साधारण मनुष्योंने भी indevision रिक्ट प्रस्ति, Sanyar अभिरुक्त अमि प्रस्तुका अभिरुक्त किया मुन्ति एक अभी मुन्ति एक अभी प्रस्तुका

संख्या ९] भगवान् श्रीकृष्णका उद्धवको ज्ञानोपदेश ३१	
**************************************	************************************
ले लिया। इस प्रकार उसकी सारी सम्पत्ति समाप्त	व्यर्थयार्थेहया वित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम्।
हो गयी। न तो उसने धनसे धर्मकार्य किया और न	कुशला येन सिध्यन्ति जरठः किं नु साधये॥
ही उसका सुख भोगा। धन-समाप्त होनेपर उससे	जो मनुष्य देवता, ऋषि, पितर, प्राणी, भाई,
उसके अपने ही विमुख हो गये। अब तो वह सदा	परिवारजन और उस धनके भागीदारोंका भाग नहीं देता,
ही भयंकर चिन्तासे घिरा रहने लगा। अब उसे संसारके	वह यक्षके समान धनकी रखवाली करनेवाला अधोगतिको
प्रति दु:ख-बुद्धिसे वैराग्यका अनुभव होने लगा। जैसे	प्राप्त होता है।
ही उसके मनमें वैराग्यका प्रभाव पड़ने लगा, वह	उस ब्राह्मणको अब चेतना आयी कि वह अपने
सोचने लगा, जिस धनके लिये उसने रात-दिन परिश्रम	कर्तव्यसे विमुख हो गया है। उसने सोचा कि मैंने
किया, वह मेरे किसी काम नहीं आया। यह नितान्त	प्रमादवश अपनी आयु, धन और बल-पौरुष खो दिया,
सत्य है कि जो व्यक्ति येन-केन-प्रकारेण केवल	जिस विवेकसे मनुष्य मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है, उस
धन-संग्रहमें ही लगे रहते हैं, वे उसका धर्म-कार्योंमें	शक्तिको धन एकत्रित करनेमें व्यर्थ ही गवाँ दिया। अब
उपयोग न कर पानेके कारण नरकमें जाते हैं। मनुष्यका	वृद्धावस्थामें कौन सहारा देगा।
लोभ यशस्वीके यश और विद्वान्के प्रशंसायोग्य गुणोंका	किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत।
भी नाश कर देता है।	मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः॥
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।	नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥	येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।	सोऽहं कालावशेषेण शोषियष्येऽङ्गमात्मनः।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥	अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात् सिद्ध आत्मनि॥
चोरी, हिंसा, असत्य-भाषण, अहंकार, काम,	तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वराः।
क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा,	मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वाङ्गः समसाधयत्॥
लम्पटता, जूआ और शराब—ये सारे अनर्थ मनुष्योंमें	यह मानवशरीर कालके गालमें पड़ा हुआ है। इसे
धनके कारण ही होते हैं। इसलिये सुसंस्कारित मनुष्योंको	धनसे, धन प्रदान करनेवाले देवताओंसे, भोग-वासना
चाहिये कि इन दुर्गुणोंका त्याग कर दें।	पूर्ण करनेवालोंसे तथा बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें
भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा।	डालनेवाले सकाम कर्मोंसे लाभ ही क्या है।
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः॥	मैं मानता हूँ कि प्रभु मुझपर प्रसन्न हैं, तभी तो
अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः।	उन्होंने मुझे वैराग्य दिया है। सत्य तो यह है कि वैराग्य
त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम्॥	ही संसार-सागर पार करनेके लिये नौकाके समान है।
भाई-बन्धु, स्त्री, पुत्र, माता-पिता तथा समस्त	अब मैं उस अवस्थामें पहुँच गया हूँ, जहाँ
सगे-सम्बन्धी—ये सब धनके कारण शत्रु बन जाते हैं।	आत्मलाभसे सन्तुष्ट होकर परमार्थ-कार्यमें लग जाऊँ।
ये सगे-सम्बन्धी धनके कारण आपसी प्रेम-सम्बन्ध भी	शेष जीवन तपस्यामें लीन रहूँगा। तीनों लोकोंके स्वामी
इस स्तरतक भुला देते हैं कि एक-दूसरेके प्राणोंके भी	मेरे इस संकल्पमें मेरी सहायता करें। मैं जानता हूँ,
प्यासे हो जाते हैं और अपने कुकर्मोंसे सर्वनाशतक कर	राजा खट्वांगने दो घड़ीमें ही भगवान्की शरणागति
डालते हैं।	प्राप्त कर ली थी।
देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन् बन्धूंश्च भागिनः।	इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावन्त्यो द्विजसत्तमः।
असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः॥	उन्मुच्य हृदयग्रन्थीन् शान्तो भिक्षुरभून्मुनिः॥

32 िभाग ९६ कोई उसे चोर कहता, कोई कहता यह भिखारी मौनका स चचार महीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः। नगरग्रामानसङ्गोऽलक्षितोऽविशत्॥ दिखावाकर अपना कार्य सिद्ध कर लेता है। कभी-कभी भिक्षार्थं भगवान् श्रीकृष्णने कहा-हे उद्भव! उज्जैननिवासी उसे गरमी-सरदीका भौतिक कष्ट भी सहना पडता, परंतु उस ब्राह्मणने अहंकारका त्याग कर दिया और शान्त वह अपनी साधनाके पथपर सदैव अडिग रहा। इतना सब कुछ होनेपर भी उसके मनमें कोई विकार नहीं

भावसे संन्यास धारण कर लिया। अब उसकी किसी भी भौतिक वस्तुमें आसक्ति न रही। उसने अपने मन-इन्द्रियों

और प्राणोंको वशमें कर लिया। अब वह नगर-नगर, ग्राम-ग्राम स्वच्छन्द होकर विचरण करने लगा। इसी

बीच वह कहीं भी किसीसे भी भिक्षा माँगकर उदरपूर्ति करने लगा।

धीरे-धीरे उसने वृद्धावस्थामें प्रवेश कर लिया। दुष्ट प्रकृतिके लोग उसे भाँति-भाँतिसे प्रताड़ित करने

लगे, कोई उसकी लाठी छीन लेता। कोई भिक्षापात्र छीनकर भाग जाता, कोई उसकी रुद्राक्षकी माला झटक लेता। जब-जब वह भिक्षा माँगकर नदी-किनारे खाने बैठता, तो वे लोग उसपर थूक देते। मौन न तोड़ते देख

परम ब्रह्म नमस्काराष्टक

[8]

वे पापीजन उसे मारने-पीटनेसे भी संकोच नहीं करते।

होता। वह जान चुका था कि यह सब उसके पूर्वजन्मके

कर्मोंका फल है। वह समझ गया था कि प्राचीनकालमें ऋषि-मुनियोंने जिस परमात्मनिष्ठाका आश्रय ग्रहण किया था, मैं भी उसी मार्गपर चलकर इस अज्ञानरूपी सागरको पार कर लुँगा। श्रीकृष्णने कहा-हे उद्भव! अपनी वृत्तियोंको मुझमें समाहित कर दो और सारी भक्तिका उपयोगकर

प्रकार समझ लो कि समस्त योग साधनाका यही सार-संग्रह है। तस्मात् सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया। मय्यावेशितया युक्त एतावान् योगसंग्रहः॥

दीनरक्ष

कर्ममय

नमस्कार

योगरूप

नमस्कार

चिन्मय

[4]

[b]

[6]

नमस्कार बारम्बार

बारम्बार

पक्षहीन

सर्वमित्र

दयानिधे

धर्मरूप

नमस्कार

नमस्कार

(श्रीशरदजी अग्रवाल)

आदिदेव अनादिदेव देवातीत नमस्कार। अन्तर्यामी अभयदेव कालातीत नमस्कार। XX XX नमस्कार नमस्कार॥ नमस्कार बारम्बार [२] आदिनाद ओंकार। अनादिनाद नादातीत गुण-अतीत निरंकार शुन्यरूप K. नमस्कार नमस्कार बारम्बार K. [3] ¥ धर्मरूप न्यायरूप सत्यरूप दीनबन्ध् प्रेमरूप दिव्यरूप H. नमस्कार बारम्बार

[8]

बारम्बार

आदितत्व-नित्यशुद्ध,

नमस्कार

नमस्कार

H

निराकार। यज्ञरूप नमस्कार॥ नमस्कार सत्यसार। गृढब्रह्म प्रेमसार।

नमस्कार॥ सत्वरूप रजस्वरूप तमस्वरूप गूढ्-अपार।

नमस्कार ॥

ज्ञानरूप-तत्वसार।

बारम्बार नमस्कार॥ [ξ] पूर्णकाम कामकोटि, सिन्धु रूपके अपार।

मनको वशमें करके मुझमें ही स्थित हो जाओ। भली

* भोगरूप निर्विकार। 2 बारम्बार नमस्कार॥ 200 दिव्यतेजमय 200 प्रकाश। हे असीम, हे अभय, हे अनन्त, हे विराट। 2

धर्मराज।

सर्वनाथ।

200

200

2

2

नमस्कार॥ 2 200 हूँ शरण, करो वरण, पुंजभूत हैं विकार।

* दु:ख-अतीत, सुख-अतीत, रसस्वरूप हे अपार।

संख्या ९] नवधा भक्ति नवधा भक्ति (श्रीलालजी मिश्र) नवधा भक्तिका प्रसंग श्रीरामचरितमानसके अरण्य-सम्बन्धका निर्माण करते हैं, परंतु यदि भक्तिविहीन काण्डमें वर्णित है। भक्तिमती शबरीजी मतंग ऋषिकी व्यक्ति है, तो वह जलरहित बादलके सदृश है। शिष्या थीं। उनकी सेवा, सरलता, श्रद्धा एवं भक्तिसे शबरीने कहा-प्रभो! आप केवल भक्तिका नाता प्रसन्न होकर ऋषिने उन्हें श्रीराम-नाम-मन्त्रकी दीक्षा दी मानते हैं, यह बात तो कह दी आपने, लेकिन हमारा और आश्वस्त किया कि इस नामके जपसे नामी अर्थात् नाता भगवान्से जुड़े, सम्बन्ध बने, सम्बन्ध गहरा हो, रामकी प्राप्ति होगी। नामी स्वयं चलकर तुम्हारे पास बढता जाय—इसकी कोई प्रक्रिया है क्या? भगवानुने कहा कि प्रक्रिया तो है— आयेगा। उन्होंने पूछा कि 'महाराज! जिसका ये उत्तम नाम है, उसका परिचय क्या है ?' बोले—' बेटी! तुम इस नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥ विषयमें ज्यादा मत सोचो, बस नाम-जप करो।' नवधा भक्तिका सामान्य अर्थ नौ प्रकारकी भक्ति तदुपरान्त शबरी निरन्तर श्रीराम नाम-जप करने होती है। परंतु इस प्रसंगमें नवधाका तात्पर्य नौ चरणों लगी तथा श्रीरामके आनेकी प्रतीक्षा करती रही। कालान्तरमें अथवा नौ सोपानोंमें भक्ति है। समग्र भक्तिका उत्तरोत्तर विकास नौ चरणोंमें होता है, जिसमें प्रत्येक क्रमिक एक दिन उसकी साधना सफल हुई, उसकी प्रतीक्षाका अवसान हुआ। श्रीराम लक्ष्मणके सहित सीता माताकी सोपान एक-दूसरेसे सम्पृक्त हैं तथा किसी सोपानमें खोज करते हुए उनकी कुटियामें पधारे। शबरीने अपने भक्तिका विकास उसके पूर्व सोपानमें भक्तिके विकासके गुरु मतंग ऋषिके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए प्रसन्नता बिना सम्भव नहीं है। (१) भक्तिका प्रथम सोपान है—'प्रथम भगति व्यक्त की। सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए।। संतन्ह कर संगा।' हमारी चित्तवृत्ति यदि बहिर्मुखताको त्यागकर अन्तर्मुखी भगवान् श्रीराम जब शबरीजीके आश्रममें आते हैं, तो भावमयी शबरीजी उनका स्वागत करती हैं, उनके हो जाय, ईश्वरकी ओर उन्मुख हो जाय, अपनी आत्माकी श्रीचरणोंको पखारती हैं, उन्हें आसनपर बैठाती हैं और तरफ उन्मुख हो जाय, जीवनका लक्ष्य आध्यात्मिक हो रसभरे कन्द-मूल-फल लाकर अर्पित करती हैं। जाय तो जीवनकी दिशा ही बदल जायगी। ऐसा केवल सत्संगमें विनय हो, सत्संगमें सेवा हो, निरहंकारिता तभी सम्भव हो पायेगा, जब हम सत्संगतिका आश्रय लें। हो, तभी वह सफल है। शबरीने विनय एवं निरहंकारितापूर्वक सन्तोंकी संगति—उनके उपदेशोंका श्रवण, मनन एवं सत्संग किया। कोई वन्दना नहीं की। कोई स्तुति नहीं निदिध्यासन करना भक्तिकी पहली साधना होती है, यही की। चुप रह गयी। भावावेग इतना है कि वाणी साथ प्रवेशद्वार है भक्तिकी साधनाका। सन्तों एवं महापुरुषोंकी नहीं देती है। तब मौन ही मुखर हो उठता है। बार-बार संगति मिलनेसे चित्तवृत्ति अन्तर्मुखी होती है, प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥ अपनी आत्माके पास खिंचती हुई लगने लगती है। वहीं शबरी बार-बार अपनेको अधम और मन्दमित कामी व्यक्तिकी संगति हमारे भीतर कामना जगाती है-कहती है, परंतु भगवान् श्रीरामने शबरीको 'भामिनी' संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ। शब्दसे अलंकृत किया, जिसका अर्थ है—तेजस्विनी या यदि किसीके जीवनमें सुमित है, सत्कीर्ति है, ज्योतिर्मयी। और कहा— सद्गति है, वैभव है, भलाई है, तो तुलसीदासजी कहते कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥ हैं कि आप ध्यानपूर्वक देख लेना कि उसके जीवनमें सामान्य रूपसे लोग जाति-पाँति, कुल, धर्म, कोई सत्पुरुष अवश्य है—'सो जानब सतसंग प्रभाऊ।' बड़प्पन, धन, बल, परिवार, गुण और चतुराईके आधारपर इस प्रकार सत्संग प्राथमिक भक्ति है।

भाग ९६ ********************* (२) दूसरी भक्ति है—'दूसिर रित मम कथा व्यक्ति गुरुके पास जाता है। गुरुके पास जाना, उसकी सेवा करना और सेवासे प्रसन्न करके उससे प्रश्न प्रसंगा॥' सत्संगके पश्चात् क्रममें हमारे हृदयमें भगवान्की पुछना-अपनी जिज्ञासा बताना। छविका निर्माण हो गया। ऐसी मनोहर छवि बनी कि तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। ईश्वर अपना प्रिय और सम्बन्धी मालूम पड़ने लगा। (गीता ४। ३४) भगवान्ने शबरीसे कहा—'शबरीजी! अभिमानशून्य अन्त:करणमें केवल राग-द्वेष, अहंकार-कामना, त्रिगुण होकर गुरुदेवके चरणोंकी सेवा करना मेरी तीसरी भक्ति ही नहीं भरे हैं, बल्कि इसमें ईश्वरका भी निवास-स्थान बताया गया है। गीता (१८।६१)-में कहा गया है— है।' शबरीजीका जीवन तो गुरु-सेवामें ही बीता था, वस्तृत: नवधा भक्तिका उपदेश तो शबरीजीको निमित्त ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। यह वही अन्तर्यामी ईश्वर है, जिसे वेदने कहा कि बनाकर मानवमात्रके कल्याणके लिये किया गया है। आपके सखा-जैसा है। भागवतमें उसे अविज्ञात सखा गुरुकी महिमा परम्परासे भी बहुत अधिक मानी जाती रही है। शास्त्रोंमें गुरुको ब्रह्मा, विष्णु और शिवका रूप बताया गया है। एक बार उस अन्तर्यामीका, उस सबसे दिया गया है। गुरुकी सेवा तो करनी ही चाहिये, परंतु निकट सखाका पता चल जाय, उसके गृढ चरित्रका परिचय मिल जाय तो उसकी लीलाके बारेमें सुननेमें इसके साथ जो अमान शब्द जुड़ा है, वह महत्त्वपूर्ण आनन्द आने लगता है। भगवान् कहते हैं, 'मेरी कथाके है-अर्थात् अभिमानशून्य होकर गुरुकी सेवा करना; अलग-अलग प्रसंग सुननेसे मेरे प्रति प्रेम बढता है।' क्योंकि अमान सेवा ही वास्तविक सेवा होती है। (४) चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट इसका दूसरा अर्थ निकला कि अन्य कथा-प्रसंगोंमें विरक्ति होने लगती है-तजि गान॥ जो व्यक्ति कपट छोड़कर मेरे गुणोंका गायन करता है, अन्येषां कथाप्रसंगे रतिर्न भवति विरतिर्भवतीत्यर्थः। वह अपने जीवनमें भक्तिके चौथे सोपानपर चढ जाता है। सत्संगके द्वारा लक्ष्य बदला, दिशा बदली, चित्तवृत्ति प्रभुकी ओर मुड़ गयी और शनै:-शनै: प्रबल परिवर्तन साधक कई प्रकारसे गुणगान कर सकता है। साधकने जीवनमें आया कि लोकचर्चा और लोगोंके चरित्र चॅंकि गुरुमुखसे श्रवण कर लिया, विनयपूर्वक श्रवण किया, कहनेमें और सुननेमें जो थोड़ा-बहुत आनन्द मिलता था, सेवापूर्वक श्रवण किया, निरिभमान होकर श्रवण किया, वह अब अच्छा नहीं लगता है। जहाँ भगवान्की कथा जिज्ञासु होकर श्रवण किया, तो अब अगला जो सोपान है, चल रही हो, वहाँ मन रमने लगता है। इसलिये-वह मननका है और मननमें प्रवचन शामिल है, जिसमें 'दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।' विचारोंका आदान-प्रदान होता है। इसलिये प्रवचन भी (३) गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति एक साधना है। प्रवचन साधकके लिये एक साधना है। **अमान**—यह भक्तिके चरणबद्ध विकासका तीसरा क्रम हमारे शास्त्र कहते हैं—'एषा वाङ्मयी सेवा।' है। जब व्यक्ति अपनी साधनामें आगे बढता है, तब उसे प्रवचन अथवा प्रभुका गुणगान एक शब्दमयी पूजा है। ये शब्दके पुष्प मैं आपके चरणोंमें रखता हूँ। दुनिया भगवानुका चरित्र सुननेमें आनन्द आने लगता है और उसे जिज्ञासा होने लगती है। उस जिज्ञासाके निवारणके उसका सुगन्ध ले तो अच्छा ही है। कपटका अर्थ होता है—अन्यथा प्रदर्शन। जो वस्त्-लिये एक गुरुकी आवश्यकता होती है। अर्जुनको आवश्यकता प्रतीत हुई, उसने श्रीकृष्णको गुरु बनाया। स्थिति है, उसे छिपाना और उसके बजाय कुछ और दिखाना। शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। (५) 'मंत्र जाप मम दूढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥' (गीता २।७) Hinduisma वृद्ध MAADE अपाम मेरीभूज कि प्राप्त hyttes: अर्थनक अस्प्री harma वृद्ध MAADE अपाम मेरीभूज के प्राप्त के प्राप्

संख्या ९] नवधा	भक्ति ३५
*******************************	**********************************
करना—यह मेरी भक्तिका पंचम सोपान है। अब	कि जीवनमें नियंत्रित रूपसे ही भोगोंको स्वीकार किया
साधकके जीवनमें जपकी प्रधानता आ गयी। प्रधानताका	जाय। ईश्वरको समर्पण करके, उनके प्रसादके रूपमें, इन
मतलब यह है कि इसके पहले भक्तिके चारों सोपान	सबको स्वीकार करना कल्याणकारी हो सकता है।
इसमें सिन्निहित हैं। पाँचवें क्रममें निवृत्ति बढ़ी। प्रवचन,	तुम्हिंह निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
श्रवण, सत्संग सब होता है, लेकिन जप बढ़ गया।	(रा०च०मा० २।१२९।२)
वेदमें जो भक्ति बतायी गयी है, वह पाँचवीं	भगवान् दमके साथ शील जोड़ते हैं—' <i>छठ दम</i>
है। उसे वैदिक भक्ति कहते हैं, अर्थात् भक्तिमें वैदिक	सील।'शीलका अर्थ है—चित्तकी कोमलता। दूसरेकी
विधिकी प्रधानता आ गयी। जपकी प्रधानता आ गयी।	भावनाका ध्यान करनेवाला, दूसरोंके दु:खको समझकर
मन्त्रके दो अर्थ होते हैं—मननात् त्रायते इति मन्त्रः—	उसके अनुरूप आचरण करनेवाला व्यक्ति शीलवान्
मन्त्र एक ऐसी चीज है, जिसका मनन करनेसे हमारा	कहा जाता है। बहुधा 'दम' वाले व्यक्ति दूसरोंकी
परित्राण होता है और दूसरा मन्त्र होता है जप	भावनाका ध्यान नहीं रखते। शीलको मानसमें बड़ा
करनेके लिये। मन्त्र-जप करनेसे प्राणमें एक लय	प्रशंसनीय गुण माना गया है। भगवान् रामके जिस
बनती है। मन्त्रमें जो छन्द है, मन्त्रमें जो लय है,	गुणपर संसारके सभी लोग मुग्ध हैं—वह उनका शील
उसी लयसे प्राण चलने लगता है। प्राण माने वायु	ही है। उन्हें 'शीलिसन्धु' कहा जाता है।
नहीं। प्राण माने जीवन-शक्ति। लय प्राणके साथ	अब आगे आता है— 'बिरति बहु करमा। '
संयुक्त होती है, जिसका शारीरिक संरचनापर बहुत	माने बहुत कर्मोंसे वैराग्य। वैदिक अध्यात्मशास्त्रमें दो
प्रभाव पड़ता है। यह एक वैज्ञानिक साधना है। यदि	मार्ग बताये गये हैं—प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्ग। रजोगुणकी
कोई गहन साधना करना चाहता है। तन्मय होकर	प्रधानतासे प्रवृत्तिमार्ग होता है। केवल प्रवृत्तिसे
साधना करना चाहता है, तब उसको प्रभुके ऊपर	कर्मबाहुल्य बढ़ता जायगा। उससे कुछ लाभ नहीं
दृढ़ विश्वास रखना होगा। प्रभुका वचन है कि—	होगा, बल्कि वह पतनका कारण बन जायगा। इसलिये
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।	प्रवृत्तिमें धर्म और प्रभु-समर्पणका संयोग हो, ताकि
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥	जीवनमें निवृत्तिका प्रवेश हो सके। इसके लिये आवश्यक
(गीता ९। २२)	है कि अपने समस्त कर्मोंको ईश्वरको अर्पित कर
(६) भक्तिके विकासके छठे सोपानमें भगवान्	दिया जाय।
श्रीराम शबरीसे कहते हैं—'छठ दम सील बिरति बहु	(७) 'सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें
करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥'	संत अधिक करि लेखा॥'
छठे सोपानतक पहुँचते-पहुँचते भक्तकी स्थिति	भक्तिके क्रमिक विकासके क्रममें साधक उत्तरोत्तर
ऐसी ऊँची हो जाती है कि भक्तकी रहनीको ही हम भक्ति	अन्तर्मुखी होता जाता है। सातवें चरणमें 'देखना' ही
बोलते हैं। अब भक्तकी रहनीमें जो साफ दिखायी देता है	भक्ति है। कैसा देखना? भगवान् कहते हैं—सम और
वह है—दम। इन्द्रियोंके निग्रह (संयमन)-को दम कहते	मोहिमय। सम होना और जगत्को ईश्वरमय देखना—
हैं। वेदान्तमें आता है—'मनोनिग्रहः शमः इन्द्रियनिग्रहः	सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
दम:।' दम कोई तात्कालिक अभ्यास नहीं है, एक सतत	समस्त जगत् ईश्वरपर अध्यस्त है। वस्तुत: (ज्ञान
अभ्यास है, ताकि हमारा स्वभाव बन जाय। इन्द्रियाँ	हो जानेपर) जगत्का कोई अस्तित्व नहीं है, केवल
मनकी अनुगामी होती हैं। मन जो चाहता है, वही हमारी	प्रतीतिमात्र है।
इन्द्रियाँ करती हैं। मनुष्यकी सभी इन्द्रियाँ भोगोन्मुख हैं	सातवें क्रममें, धीरे-धीरे साधनाका सुपरिणाम
और भोगकी कोई सीमा नहीं है। इसलिये आवश्यक है	चित्तपर प्रकट हुआ और चित्तमें समता आ गयी।

चित्तकी समता कई प्रकारकी होती है। एक समता होती दूसरोंके दोष दिखायी नहीं देते; क्योंकि दूसरोंके दोष है ज्ञानी पुरुषकी। दूसरी समता होती है, जो ज्ञानी होते देखनेमें उसकी रुचि नहीं रहती। जब व्यक्ति अपनेमें हुए सन्त भी हैं। एक समता होती है, तीव्र साधककी रमण करता है, तब उसे दूसरेके दोष देखनेका समय ही और एक समता होती है-धर्मनिष्ठकी। नहीं मिलता। आनन्द भी नहीं आता। आप इतने मग्न धर्मनिष्ठकी समता होती है उसकी निष्पक्षता। माता-रहें, अपने भीतर आनन्दसे इतना परिपूर्ण रहें कि दूसरेके पिता अपने बच्चोंके लिये तथा जज अपने मुकदमेके लिये दोष-गुण देखनेमें कोई रुचि ही न रहे। निष्पक्ष रूपसे आचरण करता है। यही निष्पक्षता उनकी (९) नवम सोपान भक्तिका अन्तिम सोपान है और बहुत गम्भीर है। भगवान्ने कहा—'नवम सरल समता है। दूसरी समता तीव्र साधककी होती है। जो सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥' बिलकुल निरत है। कौन क्या करता है, उस तरफ उसका ध्यान ही नहीं जाता है। उसे समय ही नहीं है, कि कोई नवम भक्ति—सरलता है। सरलताका सीधा-सा उसके बारेमें क्या सोच रहा है ? यह भी एक समता है। अर्थ है-जैसा भीतर वैसा बाहर। बिलकुल पारदर्शिता ज्ञानीकी समता क्या है ? वह तो विद्या-विनयसम्पन्न हो। उसको लोग बोलते हैं कि बड़े सरल हैं। ब्राह्मणमें, गायमें, हाथीमें, श्वान (कुत्ते)-में तथा चाण्डालमें इसका उलटा चतुर होता है। चतुराई ही हमारी समान रूपसे एक ही आत्माका दर्शन करता है। मूर्खता है। आजका चतुर होकर कोई सुखी नहीं हुआ। उसके सगे, उससे सहज प्रेम नहीं कर पाते। विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ उसका कोई सच्चा दोस्त नहीं बन सकता। जीवनमें चतुराई बस उतनी ही चाहिये, जितनेमें दूसरोंकी चतुरता (गीता ५। १८) परंतु सन्तका चित्त कोमल होता है, उसकी समता समझमें आ जाय और उससे बचकर रह सके। जीवनमें रस लेना है, तो सरलता चाहिये। है—सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥ 'मम भरोस हियँ हरष न दीना'—ऐसे साधकके इस प्रकार जब चित्तमें समता आयी, तो साधक चित्तमें भगवान् रहते हैं। इतना प्रबल आलम्बन है उसे जगत्को प्रभुमय देखने लगता है। इसके बाद साधक इस भगवान्का कि उसके पास न हर्ष आता है, न दैन्य आता स्थितिमें पहुँच जाता है कि 'मोते संत अधिक करि है। यह भक्तिकी पूर्णतम स्थिति और अन्तिम सोपान है। लेखा। ' वह भगवान्से भी अधिक महत्त्वपूर्ण सन्तको शबरीजी स्वयं सिद्ध साधिका थीं, भक्तिके सभी गृढ़ मानने लगता है— तत्त्व उन्हें ज्ञात थे। उनका प्रश्न भविष्यके साधकोंके लिये था। भगवान्ने स्वयं शबरीजीकी प्रशंसा करते हुए कहा— गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पायँ। 'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।' बलिहारी गुरु आपने गोबिंद दियो बताय॥ (८) आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं भगवान् आगे कहते हैं—योगियों और तपस्वियोंको भी जो गति दुर्लभ है, वह तुम्हें प्राप्त है। वह तुम्हें, देखड परदोषा॥ आठवें सोपानपर श्रीराम कहते हैं कि साधकका मन तुम्हारी भक्तिसे सहजमें ही प्राप्त है। ऐसा हो जाता है कि 'जथा लाभ संतोषा।'जो मिलता यह स्थिति बहुत ही विलक्षण एवं हृदयंगम है, उसमें सन्तुष्ट है। सन्तोष मन मारनेका नाम नहीं है। करनेयोग्य है। भगवान् यह भी कहते हैं कि मेरे दर्शनका सन्तोषका अर्थ होता है—सः तृप्तः अस्ति। अनुपम फल यह है कि जीवको अपने स्वरूपका ज्ञान इस सोपानके भक्तके लिये आगे कहते हैं कि हो जाय। इस प्रकार भगवान्ने शबरीजीके माध्यमसे 'सपनेहुँ नहि देखइ परदोषा।' अर्थात् स्वप्नमें भी उसे अपने सभी भक्तोंको भक्तिका उपदेश दिया।

भाग ९६

शिवपूजनकी महनीय भूमि मगध संख्या ९] तीर्थ-दर्शन— शिवपूजनकी महनीय भूमि मगध (डॉ० राकेश कुमार सिन्हा 'रवि', एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०) भारतीय सांस्कृतिक परम्पराका मेरुदण्ड यहाँकी श्रीराम च्यवनाश्रम आये। यहाँ उन्होंने स्नान किया और धार्मिक आस्था और उसकी सुदीर्घ परम्परा है, जिसमें मुनिके दर्शन किये तथा रामेश्वर एवं रामतीर्थकी स्थापना की—'रामतीर्थं च रामेशं चकार तत्र राघवः॥'(६।६२) मगधकी भूमि आदि-अनादिकालसे धर्म एवं दर्शनकी प्रमुख स्थली रही है। वैसे तो इस पुण्यमयी भूमिमें गयापालमूलदर्पणके अनुसार भगवान् श्रीरामके चरण पंचदेवोंके अतिरिक्त कोटि-कोटि देवताओंकी पूजा की इस धरतीपर पड़े थे और उन्होंने इस क्षेत्रमें 'मद्येश्वरनाथ' जाती है, जिसमें भोलेनाथजीका सर्वप्रमुख स्थान है। एवं देवकुण्डमें 'दुधेश्वरनाथ' का भी उद्धार किया था। वेद-पुराणोंमें उल्लिखित मगध वही महिमामयी, गरिमामयी तदनन्तर उन्होंने पितृश्राद्धके लिये इसी मार्गसे मोक्षतीर्थ धरती है, जहाँ देवाधिदेव सृष्टिके उदयकालसे आजतक गया आकर रामशिला पर्वतपर 'पातालेश्वर-महादेव' का निर्बाध रूपमें पूजित हैं। स्थापन एवं प्रथम पूजनकर एक आदर्श स्थापित किया। मगध प्राचीन भारतके सोलह महाजनपदोंमेंसे एक महाभारतमें इस तथ्यका स्पष्ट रेखांकन है कि महाभारत था। आधुनिक पटना तथा गया जिला इसमें शामिल थे। कालमें पाण्डव-बन्धुओंने धर्मारण्यक्षेत्रकी यात्रा की, जिसकी महाभारत-कालमें जरासन्ध यहाँका प्रसिद्ध राजा था। पहचान बोधगयामें उत्तर पश्चिम दोआब भूमिके रूपमें गिरिव्रज उसकी राजधानी थी, जिसे आज राजगीर कहा की जाती है, जहाँ निरंजना और मोहाने नामधारी दो जाता है। भगवान् बुद्धके समयमें बिम्बसार यहाँके राजा पर्वतीय जलधाराओंमें गुप्त सरस्वतीका संगम हुआ है, थे। महानन्द यहींका राजा था, जिसका उच्छेदकर यहीं पितृतोया फल्गुका उद्गम होता है। इसी भूमिपर चाणक्यने मौर्यवंशकी स्थापना करायी थी। मगध पाण्डवोंने कुल पाँच स्थानोंपर शिवशंकरका पूजन किया, महाजनपदकी सीमा उत्तरमें गंगासे दक्षिणमें विन्ध्यपर्वततक, जिसमें धर्मारण्यक्षेत्रके धर्मेश्वर महादेव एवं बसाढीके पूर्वमें चम्पासे पश्चिममें सोन नदीतक विस्तृत थी। यह विशाल एकमुखी महादेवके साथ गयाके कपिलेश्वर दक्षिणी बिहारमें स्थित था। मगधक्षेत्रके अन्तर्गत बिहारके महादेवकी गणना उत्तमोत्तम शैवतीर्थके रूपमें की जाती है। जिन जनपदोंका नाम लिया जाता है, उनमें गया, नवादा, राजा जरासंधद्वारा राजगीरके वैभारपर्वतपर और जहानाबाद, औरंगाबाद, नालन्दा, अरवल, शेखपुरा और बाणासुरद्वारा बराबर-पर्वतपर स्थापित शिवमन्दिर मगधके पटनाकी गणना की जाती है। प्रस्तुत लेख इसी क्षेत्रकी प्राचीनतम शिवपूजन-केन्द्र हैं। बाणासुरकी पुत्रीद्वारा भी यहाँ तीन स्थानपर शिवलिंग-स्थापन किया गया है, शिवपूजनकी परम्परापर आधारित है। आज मगधकी महत्ता भले ही कुछ रूप, कुछ जिनके नाम पंचिशव (बेलागंज), उषेश्वरनाथ (ढिबरा) नामसे, हो पर यह आकाट्य सत्य है कि अखिल विश्वमें एवं कोटेश्वरनाथ (मेन) हैं-इन तीनोंकी स्थापना मगध ही वह महिमामय स्थान है, जहाँ न सिर्फ राजा-महासुन्दरी उषाने की थी, जो बाणासुरकी शिवभक्ता पुत्री महाराजाओं, सेठ-साहुकारों एवं आमजनोंने शिवलिंगकी थी। लोमश ऋषिने लोमेश्वर महादेव (बराबर), शृंगी स्थापना की, वरन् स्वयं देवताओंने भी इस धरतीपर ऋषिने शृंगेश्वर महादेव, कश्यप ऋषिने कश्यपेश्वर देवाधिदेवका नमन-पूजनकर उनके स्थापन एवं देवालय-महादेव, तो दुर्वासा मुनिने भुरणाहा क्षेत्रमें शिवलिंग विकासमें अप्रतिम योगदान दिया। स्थापित किये, जिन्हें आज इतने वर्षों बाद भी देखा जा मगधमें प्रभु श्रीरामके आगमनका विवरण 'आनन्द सकता है। ऐतिहासिक युगमें भी यहाँ शिवपूजनकी परम्परा रामायण'के यात्राकाण्डमें मिलता है। यात्राके क्रममें प्रभु

[भाग ९६ \$ में एकादश शिव मन्दिरकी अपनी महत्ता है तो मगधके बनी रही और तथागत भगवान् बुद्धके जमानेमें यहाँ स्थान-स्थानपर देवालय थे। बादमें मगधमें ऐसे कितने राजे-रजवाडोंने भी शिवालय-निर्माणमें अपना अमुल्य ही पूजा-स्थलोंका उदय एवं विकास हुआ, जहाँ मनौती योगदान दिया। टिकारी इस्टेटने दो दर्जनसे अधिक स्तूपके विभिन्न आकार-प्रकारको शिवलिंग मानकर शिवालय बनवाये, जिनमें फतेहपुरका विशाल शिवाला उन्हें शिवशंकरकी भाँति पूजा जाने लगा और आज भी देखनेयोग्य है। सम्पूर्ण मगध ही नहीं, पूरे देशमें उसकी सम्पूर्ण मगधमें ऐसे कुछ शिव-मन्दिर हैं, जहाँ मनौती गणना की जाती है, जो गया से ३४ कि॰मी॰ की दुरीपर स्तूप ही शिवलिंगके रूपमें पूजित है। है। देव राजवंश बुधौली इस्टेट, फतुहा इस्टेट, हथुआ सम्पूर्ण देशमें गुप्तकालसे मन्दिरनिर्माणका जो राज, मकसूदपुर इस्टेट आदिके बनवाये गये शिवालय आज भी देखे जा सकते हैं, तो गौरांग महाप्रभु चैतन्यके अविरल क्रम प्रारम्भ हुआ, वह बादमें कितने ही वर्षींतक जारी रहा और इसी क्रममें मगधमें भी स्थान-स्थानपर एकादश रुद्रेश्वर—जंगमेश्वरके दर्शनसे उस युगकी याद शिवालय बने। इत्सिंगके विवरण स्पष्ट करते हैं कि ताजा हो जाती है। इसके निर्माणमें मध्यकालीन शैलीका नालन्दासे ४० कि०मी० की दूरीपर मृगशिखा वनमें एक बहुतायत प्रयोग हुआ है। राजा मानसिंहके नौ वर्षीय विशाल शिवालय था। यह जानकारीकी बात है कि गया-प्रवासके समय भी यहाँ पाँच विशाल मन्दिर बनाये नालन्दाके राजगीरसे सटे पाँच वन आज भी हैं। मगधमें जानेका अपना विशेष महत्त्व है, इसमें नीलकंठेश्वर शिव-मन्दिर-स्थापनमें नरसिंहगुप्त एवं बालादित्यगुप्तका महादेव (मानपुर) आज भी शानके साथ खड़ा है। नाम आता है। गुप्तनरेश आदित्यसेनने गयाक्षेत्रमें शिवालय इन्हींके जमानेमें गयाके चारों पीढ़ीका शिवमन्दिर दुरुस्त हुआ, जिनके नाम हैं वृद्धपरिपतामहेश्वर (अक्षयवट), बनवाये एवं अपनी राजधानी अपसढ (नवादा)-में पुरातन शिव-मन्दिरका नवसंस्कार किया तो उनकी पत्नी परिपतामहेश्वर (लखनपुरा), पितामहेश्वर (फल्गुतट) कोणदेवीने देवघरके वैद्यनाथतीर्थके राजेश्वर महादेव एवं मार्कण्डेय शिवमन्दिर जो गयाके सप्त सरोवरोंमें मन्दिर-निर्माणमें अमुल्य योगदान किया। एक वैतरणीके सम्मुख है। इसके बाद भी मगधक्षेत्रमें शिवमन्दिर-निर्माणका सम्पूर्ण मगधक्षेत्रकी यह खासियत रही है कि यहाँ क्रम जारी रहा, पर पालकालमें यहाँ एकसे बढकर एक दो इंचसे लेकर बारह फीटतकके ऊँचाईके शिवलिंग स्थापित शिवालयोंकी स्थापना हुई। पालनरेश धर्मपाल, देवपाल हैं। यहाँके प्रायशः शिवलिंग पालकालीन हैं, पर गुप्तोत्तर एवं विग्रहपालने मगधक्षेत्रमें कुल मिलाकर दर्जनसे काल और मध्ययुगीन शिवलिंग भी यहाँके देवालयोंमें अधिक मन्दिरोंका नवउद्धार किया। इसमें राजा धर्मपालके स्थापित हैं। जहाँतक पालकालीन कृतिका सवाल है, तो शासनकालके २१वें वर्षमें बोधगयामें धर्मेश्वर महादेवकी यह तीनों कालका प्रतिनिधित्व करता है, जिसे पूर्वकाल, स्थापनाके अभिलेखीय प्रमाण हैं, तो फल्गुतटपर पिता मध्यकाल एवं उत्तरकालके रूपमें रेखांकित किया जाता महेश्वरका प्रथम संस्कार भी इसी जमानेमें हुआ। इस है। एकमुखी शिवलिंग, पंचमुख शिव, उमाशंकर एवं कालमें अन्य देवालयोंमें बैकुण्ठपुरका गौरीशंकर, बाढ़का वाहन नन्दीके विविध रूपमें यहाँ दर्शन होते हैं और सच उमानाथ, चोवारका जटाशंकर, तपोवनका कपिलेश्वर, कहें तो शिवपूजनकी जाग्रत् भूमि है मगध, जहाँ प्राचीन मीरा बिगहाका अन्नपूर्णेश्वर, उत्तरेणका सोमेश्वरनाथ, कालसे शैव सत्ता निर्बाध रूपसे विद्यमान है। पोगरका एकादश रुद्र, मनौराका शिवस्थान, उमगाका ऐसे तो वर्षभर प्रभु भोलेनाथ यहाँ पूजे जाते हैं, पर शिवालय, फतेहपुरका संडेश्वरनाथ, खनमाँका शिवालय, महाशिवरात्रिकी बात निराली होती है, तब इन शिव-धराउत शिव-मन्दिर आदि प्रमुख हैं। मन्दिरोंको दुल्हनकी भाँति सजाया जाता है और भक्तोंके

Hindाचाsसुराचांडल्वेत्वाडधार्चेह्मोतास्वर्धः अवेंडल्लुक्)dhaन्नमसन्योत्तर्भके विष्यागेने विश्वया वेखारायाः अवे

हिमाचलकी साध्वी सत्यादेवी संख्या ९] संत-चरित— हिमाचलकी साध्वी सत्यादेवी (प्रो० पूजा वशिष्टजी) भारतभूमिपर अनेक ऋषि-मुनियों, संत-साध्वियोंका दुनियादारीके कामोंमें नहीं लगता था। कृष्ण नाम-जन्म हुआ है। पुरुष-शरीरमें जन्म लेकर अनेक सन्त-स्मरण करते हुए अकेले बैठकर चिन्तन करना इनका महात्मा अध्यात्ममार्गपर अपने पैरोंके निशान छोड गये स्वभाव था। हैं, परंतु स्त्रीयोनिमें जन्म लेकर भी अध्यात्मपथपर सत्यादेवीकी १२-१३ सालकी उम्र होनेपर पिता अग्रसर होने तथा जनमानसमें भक्ति-चेतना पैदा करनेके रत्नचन्द सूदको इनके विवाहकी चिन्ता होने लगी। उदाहरण विरले ही मिलते हैं। प्राचीन भारतमें मैत्रेयी. लगभग १५ वर्षकी आयुमें सत्यादेवीका रिश्ता छोटे गार्गी, घोषा-जैसी अनेक विदुषी ज्ञानवान् स्त्रियाँ रहीं, शिमलेके एक व्यवसायी-परिवारके होनहार जो आज भी नारी जातिके लिये प्रेरणास्त्रोत हैं। श्रीरोशनलालके साथ तय कर दिया गया। परंतु कृष्णप्रेमपर सर्वस्व अर्पण करनेवाली मीराबाईकी गणना सत्यादेवीको विवाह और गृहस्थीमें कोई रुचि नहीं भक्तोंकी सर्वोच्च कोटिमें की जाती है। इन्हीं मीराबाईको थी। सत्यादेवीने अपने पितासे अपना विवाह न करनेका अपना आदर्श मानकर, जीवनभर उन्हींका अनुसरण बहुत आग्रह किया। उन्होंने बार-बार कहा कि उनका करनेवाली साध्वी भक्त सत्यादेवीका नाम देव-जन्म तो कृष्णको पानेके लिये हुआ है, परंतु पिताने भूमि हिमाचलमें अपार प्रेम तथा श्रद्धाके साथ लिया इन बातोंको बच्चीका बचपना समझते हुए इनपर कोई जाता है। ध्यान नहीं दिया और सत्यादेवीका विवाह श्रीरोशनलाल सत्यादेवीका जन्म सन् १९२० ई०में हिमाचल सुदके साथ कर दिया। विवाहके बाद भी सत्यादेवीके स्वभाव, व्यवहार प्रदेश जिला सोलनके गाँव जगातखानेमें प्रसिद्ध व्यापारी श्रीरत्नचन्द सूदके घरमें हुआ। इनकी माताका नाम और दिनचर्यामें कोई अन्तर नहीं आया। पहलेकी श्रीमती रेणुकादेवी था। श्रीरत्नचन्द सूदकी छ: सन्तानोंमें तरह ही वह कृष्ण-साधना, कृष्ण-भक्ति, कृष्ण-भजनमें सत्यादेवी सबसे बड़ी थीं। सत्यादेवीके तीन भाई लगी रहतीं। रोशनलाल सूदका संयुक्त परिवार था। श्रीओम प्रकाश सूद, श्रीधर्मप्रकाश सूद तथा श्रीदेसराज जल्दी ही परिवारके सभी सदस्योंको यह बात समझमें सूद थे। इनकी दो बहनें श्रीमती विमलादेवी सूद और आ गयी कि सत्यादेवीकी गृहस्थ-जीवनमें कोई दिलचस्पी नहीं है। तब रोशनलाल सुदके पारिवारिक सदस्योंने सुरिन्द्रादेवी सूद थीं। बचपनमें ही सत्यादेवीजीके सिरसे माँका साया सत्यादेवीके पिता रत्नचन्द सुदसे इस विषयपर बातचीत उठ गया और इनके लालन-पालनकी जिम्मेदारी इनकी की। काफी विचार-विमर्शके बाद दोनों पक्षोंमें यह सहमति बन गयी कि सत्यादेवीको गृहस्थीके बन्धनोंसे बुआ श्रीमती सरस्वतीदेवीके ऊपर आ गयी। कुछ समय बाद यह परिवार काँगड़ा जिलेके ज्वालामुखी मुक्त कर दिया जाय और कृष्ण-साधना, कृष्ण-भक्ति नगरमें आकर बस गया। घरमें शिवभक्ति और राम-के लिये पूरा अवसर दिया जाय। तब सत्यादेवीकी छोटी बहन सुरिन्द्रादेवी सूदसे श्रीरोशनलालका विवाह कृष्णभक्तिका वातावरण था। रत्नचन्द सूद रामायणका प्रतिदिन पाठ करते थे। बचपनमें ही सत्यादेवीकी कर दिया गया और सत्या देवीको पिता रत्नचन्द सुद लगन भगवान् कृष्णसे लग गयी और वह निरन्तर अपने पास वापस ले आये। कृष्णभक्तिमें मग्न रहने लगी। कक्षा पाँचतककी शिक्षा हरिद्वारमें सप्त सरोवर, भूमानिकेतन आश्रममें निवास विधिवत् ग्रहण को। रामायण, गीता, श्रीमद्भागवतका करनेवाले दण्डी स्वामी भूमानन्द सरस्वती लाला रत्नचन्द सुदके गुरु थे। सत्यादेवीने दण्डी स्वामी भूमानन्द अध्ययन नियमित तौरपर करने लगीं। सत्यादेवीका मन

भाग ९६ सरस्वतीसे दीक्षा ग्रहण की और यहींसे उनकी आध्यात्मिक प्रसारमें अपना योगदान दिया। हिमाचलके दूर-दराज यात्रा शुरू हुई। सत्याने कृष्णलीलाभूमि वृन्दावनसे क्षेत्रोंसे भी नर-नारी सत्यादेवीके प्रवचनोंको सुननेके कभी न टूटनेवाला नाता जोड़ लिया। भूमानिकेतन लिये आते थे और सत्संगरूपी गंगामें डुबकी लगाकर सप्त सरोवर, आश्रम हरिद्वारमें रहकर धर्मग्रन्थोंका आनन्दित होते थे। अध्ययन किया और जीवन पूरी तरहसे कृष्णभक्तिको प्रवचनों तथा सत्संगके द्वारा सत्यादेवीने भक्ति-समर्पित कर दिया। मार्गपर अपने हजारों शिष्योंका पथ-प्रदर्शन किया। उनका कहना था कि शरीर और मन दोनोंका स्वस्थ शिक्षा-दीक्षा पूरी होनेपर स्वामी भूमानन्द सरस्वतीने सत्यादेवीके पिता रत्नचन्द सूदको आज्ञा दी कि माँ रहना बहुत जरूरी है। शरीर स्वस्थ रहे, मन शान्त बज्रेश्वरी देवीकी पावन भूमि काँगड़ा, हिमाचल प्रदेशमें रहे, चित्तवृत्ति संतुलित रहे। जैसे-जैसे शरीरकी आयु सत्यादेवीके लिये आश्रमका निर्माण किया जाय। गुरु-बढ़े, वैसे-वैसे मनकी एकाग्रता एवं शान्ति बढ़ना जरूरी है। भजन, ध्यान एवं विचारके द्वारा आत्मतत्त्वका आज्ञाको शिरोधार्य करते हुए रत्नचन्दने काँगडामें एस०डी०एम० दफ्तरके निकट, होशियारपुर रोडपर चिन्तन करना तथा स्वस्वरूपका अनुसन्धान करना ही 'सत्संग-गीता-भवन' का निर्माण करवाया, जिसमें निर्विकल्प समाधि है। अहर्निश आत्मामें ब्रह्मस्वरूपका निश्चय रहना चाहिये। आत्मा सर्वत्र है, सर्वरूप है, कृष्ण मन्दिर, शिवमन्दिर, दुर्गामन्दिर, हनुमान्-मन्दिरकी स्थापना की गयी। सत्यादेवीने महिलाओंके लिये सिलाई आत्मासे भिन्न कुछ भी नहीं। शान्त चित्तसे किया प्रशिक्षण केन्द्र शुरू कर दिया और सिलाई सिखाकर गया चिन्तन आनन्दकी ओर जाता है। आनन्दसे प्रेम अपना जीवनयापन करने लगीं। जल्दी ही उनकी उपजता है। यही अमृत है। भगवान्की अनुकम्पासे ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी तथा सैकड़ों स्त्रियाँ जिसको भी यह प्रेमरूपी अमृत मिल जाता है, वह आश्रममें आने लगीं। प्रतिदिन भगवन्नाम-संकीर्तन सत्संग भक्त सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होकर अविनाशीका होने लगा, जिसमें भगवान् कृष्णकी बाल-लीलाओंका अंश बन जाता है। 'न सः पुनरोऽभिजायते' यही ज्ञानयोग और अनन्य भक्ति है। यही परम पुरुषार्थ है। नृत्य तथा अभिनय विशेष उल्लेखनीय है। धीरे-धीरे कॉॅंगडाकी पावन धरतीपर 'सत्संग-भक्तके हृदयमें भगवान्के प्रेमकी नित्यनवीन जिज्ञासाके गीता-भवन' एक तीर्थस्थलके रूपमें उभरने लगा और अतिरिक्त और कोई वासना नहीं रह जाती। अत: दूर-दूरसे लोग यहाँ आने लगे। काँगड़ाके कुछ सम्भ्रान्त संशयको त्यागकर, अटल निश्चयको धारण करो। परिवार, जिनमें महाजन परिवारोंका नाम प्रमुख है; जब-जब बुद्धिमें भ्रम होता है, तभी प्राणी अपनेको सत्यादेवीके श्रद्धालु और शिष्य बने। काँगडाके व्यापारी, भगवान्से भिन्न देखता है। बुद्धिका भ्रम ही भेदकी सरकारी अफसर तथा कर्मचारी वर्गके सनातनी परिवार प्रतीतिका जन्मदाता है। एकान्तमें बैठकर शान्तिका नियमित रूपसे आश्रम कॉॅंगडामें अपनी श्रद्धाके पुष्प अनुभव करो। आनन्दको आत्मसात् करो। तुम स्वयं अर्पित करने आते थे। चौमासेके दिनोंमें हिमाचल तथा आनन्दस्वरूप, परम सुखस्वरूप, अद्वितीय, नित्य, शुद्ध, निकटवर्ती क्षेत्रोंके अनेक सन्त वहाँ निवास करते तथा परिपूर्ण हो। सत्यादेवीने हिमाचलकी लोकभाषा काँगड़ीमें कृष्ण-सत्संग करते थे। रामायण, गीता, श्रीमद्भागवतके पाठ लीलापर आधारित अनेक भजनोंकी रचना की है, निरन्तर चलते। सत्यादेवीकी अनेक शिष्याओंने अपने-अपने इलाकोंमें संकीर्तन-मण्डलों तथा सुन्दरकाण्ड-जिन्हें हिमाचलके संकीर्तनोंमें बड़े मधुर भावसे गाया जाता है। महिला कीर्तन-मण्डलियोंमें ये भजन विशेष मण्डलियोंका गठन किया और सनातन धर्मके प्रचार-

बड़भागी हनुमान्जी संख्या ९] लोकप्रिय हैं, जिनपर महिलाएँ कृष्ण-रंगके आनन्दमें रही थीं तो एक देशी सफेद गाय वहाँ आ पहुँची। ड्बकर नृत्य करती हैं। शिमलाके उच्च न्यायालयके एडवोकेट नील कमल लगभग ५०-५२ वर्षींतक सत्यादेवीने 'सत्संग-सूद अपनी धर्मपत्नी श्रीमती विजयलक्ष्मीके साथ अन्तिम गीता-भवन' काँगड़ामें रहकर सनातन धर्मका खूब क्रियाएँ करवा रहे थे कि गाय श्रीमती विजयलक्ष्मीकी प्रचार किया। प्रतिवर्ष सनातन तीर्थस्थलों—अयोध्या, गोदमें सिर रखकर लगभग २ घण्टे लेटी रही और काशी, वृन्दावन, हरिद्वार आदिके दर्शनहेतु गीता भवनसे क्रियाएँ खत्म होनेपर एक बार जोरसे रँभाकर चुपचाप बसें भेजी जाती थीं, ताकि हिमाचलके सुदूर क्षेत्रोंमें वहाँसे चली गयी। शिष्य-परिवारने इसे सत्यादेवीका रहनेवाले लोग भी तीर्थयात्रा कर सकें। आशीर्वाद ही समझा। २४ दिसम्बर २००७ ई० को सत्यादेवीका गोलोक-आज भी काँगडा तथा हिमाचलके लोग सत्या गमन हुआ। जब इनके शिष्य-परिवारद्वारा हरिद्वारमें देवीका नाम बड़ी श्रद्धा और आदरसे लेते हैं तथा गंगातटके किनारे इनकी अन्तिम क्रियाएँ करवाई जा उनके गोलोकगमनदिवसपर आश्रममें मेला लगता है। बड़भागी हनुमान्जी (साकेतवासी श्रद्धेय स्वामी श्रीराजेश्वरानन्दसरस्वतीजी महाराज 'रामायणी') श्रीहनुमान्जी महाराज रामकथाके विशिष्ट पात्र हनुमानुजीको 'महाप्रभु' कहा है। ताहि समय हनुमान महाप्रभु जाय महा रजनीचर मारो। हैं। वे महान् वीर, ज्ञानकी साक्षात् मूर्ति और दुष्टोंरूपी वनको जलानेके लिये अग्निरूप तो हैं ही; साथ ही इसी प्रकार सीताजीने हरणके दौरान अरण्यकाण्डमें वे इतने भाग्यशाली हैं कि स्वयं भगवान् श्रीराम श्रीरामजीको वीर कहकर सम्बोधित किया है। उनके हृदयरूपी भवनमें धनुष-बाण धारणकर निवास बीर एक करते हैं। पर तुलसीदासजीने हनुमान्जीको सभी जगह महावीर शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि 'हनुमान्जीके कहकर सम्बोधित किया है। समान न तो कोई बडभागी है और न कोई उनके जैसा विक्रम बजरंगी। कुमित निवार सुमित के संगी॥ श्रीरामजीके चरणोंका अनुरागी है।' ऐसा क्यों है ? क्योंकि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्जीके हृदयमें बसते हैं और हनुमान्जीने अपनी भक्तिसे उनको हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥ अपना बना लिया है। तुलसीदासजी लिखते हैं कि (रा०च०मा० ७।५०।७) पर हनुमान्जी क्यों और कैसे बड़भागी हैं ? इसको सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥ समझाते हैं। और. हनुमान्जी श्रीरामजी और सीताजीके प्रिय हैं और जासु हृदय आगार बसिंह राम सर चाप धर॥ शिवजीके अवतार हैं। मतलब, हनुमान्जी सीतारामजीके लिये सदैव विशेष श्रीरामचरितमानसमें तुलसीदासजीने श्रीरामजीको बार-ही हैं; क्योंकि उन्होंने श्रीसीतारामजीको आत्मसात् कर बार 'प्रभु' कहकर सम्बोधित किया है। जैसे— लिया है और जिसने श्रीसीतारामजीको आत्मसात् कर लिया उसके बड़भागी होनेमें क्या सन्देह! बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥ दूसरी तरफ तुलसीदासजीने ही हनुमानाष्टकमें तो हैं न हनुमान्जी बड़भागी!

महाराज विक्रमादित्यकी गोभक्ति गो-चिन्तन— परदु:खकातर, परमोदार, शकारि विक्रमादित्य प्रजाके तथा दूसरे वनपशु आ सकते हैं। अत: आप यहाँसे शीघ्र

कष्टका पता लगानेके लिये प्राय: घूमते ही रहते थे।

इसी प्रकार अकेले घोडेपर बैठे वे एक बार जा रहे थे। मार्ग वनमेंसे जाता था। संध्या हो चुकी थी। शीघ्र वनसे निकल जानेके विचारसे उन्होंने घोडेको एड लगायी।

इतनेमें एक गायके डकरानेकी ध्वनि सुनायी पडी।

सम्राट्ने घोड़ेको शब्दकी दिशाकी ओर मोड़ा। वर्षा ऋतु थी। नदीमें बाढ़ आयी तो नालोंमें भी

जल चढ़ आया। बाढ़ उतर चुकी थी; किंतु नालोंमें एकत्र पंकने दलदल बना दिया था। ऐसे ही एक नालेके दलदलमें एक गाय फँस गयी थी। उसकी चारों टाँगें पेटतक कीचड़में डूब चुकी थीं। हिलनेमें भी असमर्थ

होकर वह डकरा रही थी। महाराज विक्रमादित्यने घोडेको खुला ही छोड दिया. वस्त्र उतार दिये। दलदलमें उतरकर गायको निकालनेका प्रयत्न करने लगे। स्वयं कीचडमें लथपथ हो गये। किंतु अकेले गायको निकाल लेना सम्भव नहीं

था। अन्धकारने इस कार्यको और भी कठिन कर दिया। गायकी डकार सुनकर एक सिंह उसे खाने आ पहुँचा। घोडा खुला था, अतः सिंहकी गन्ध मिलते ही भाग गया। अब विक्रमादित्यने तलवार उठायी। गायकी सुबहतक रक्षा करना आवश्यक था। उस अन्धकारमें

सिंहसे युद्ध करना भी कठिन था। सिंह आक्रमण कर रहा था और वे उसे रोक रहे थे।

समीप ही एक बड़ा वटका वृक्ष था। उसपरसे एक शुकका शब्द सुनायी पड़ा—'राजन्! गायकी तो मृत्यु आ गयी है। वह अभी नहीं मरेगी तो कलतक दलदलमें

डूबकर मर जायगी। आप उसके लिये व्यर्थ क्यों प्राण

दे रहे हैं ? अभी यह सिंह अकेला है। थोड़ी देरमें सिंहनी

ही कहीं सुरक्षित स्थानपर चले जाइये। इस वटवृक्षपर

चढ़ जानेसे भी आप सुरक्षित हो सकते हैं।'

महाराजने कहा—'शुक! मेरे प्रति तुम्हारी जो कृपा है, उसके लिये आभार; किंतु मुझे तुम अनीतिका मार्ग मत दिखलाओ।' अपने प्राणोंकी रक्षाका प्रयत्न तो

सब पुण्य कर्म व्यर्थ हैं। मेरे प्रयत्नका कुछ लाभ होगा या नहीं, यह देखना मेरा काम नहीं है। मुझे तो अपनी शक्तिके अनुसार प्रयत्न करते रहना चाहिये। इस गौकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। मैं प्राण देकर भी इसे बचानेका प्रयत्न करूँगा।

कीट-पतंग भी करते हैं। दूसरोंकी रक्षामें जो प्राण दे

सके, उसीका जीवन धन्य है। जिसमें दया नहीं, उसके



किंतु सूर्योदयसे पूर्व ही जब झुटपुटा हुआ, उनके सामने सिंह देवराज इन्द्रके रूपमें खड़ा हो गया। शुक बनकर बोलनेवाले धर्म भी अपने रूपमें आ गये और साक्षात्

पूरी रात सम्राट् विक्रमादित्य गायकी रक्षामें लगे रहे;

भृदेवी जो गाय बनकर राजाकी परीक्षा लेनेमें सम्मिलित थीं, उन्होंने भी अपने दिव्य रूपके दर्शन दे दिये।

जो उच्छंखलतावश मांस बेचनेके लिये गौकी हिंसा करते या गोमांस खाते हैं तथा जो स्वार्थवश कसाईको गाय मारनेकी सलाह देते हैं, वे सब महान् पापके भागी होते हैं। गौको मारनेवाले, उसका मांस खानेवाले तथा उसकी हत्याका अनुमोदन करनेवाले पुरुष गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षींतक

मालवेंuाडके खांडे हैंंord डिक्क ब्ला १ ttps: अर्थेडे c.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

४४

| सुभाषित-त्रिवेणी |

पण्डितके लक्षण

[The Attributes of A Pandita] निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः। तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम्।

अबन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते॥

जो पहले निश्चय करके फिर कार्यका आरम्भ

करता है, कार्यके बीचमें नहीं रुकता, समयको व्यर्थ नहीं जाने देता और चित्तको वशमें रखता है, वही

पण्डित कहलाता है।

We call him a Pandita who makes up his mind before taking up a project. Thereafter, he

works relentlessly, and does not stop mid-way. All through this he exercises total control over his mind.

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते। हितं च नाभ्यस्यन्ति पण्डिता भरतर्षभ॥

भरतकुल-भूषण! पण्डितजन श्रेष्ठ कर्मोंमें रुचि रखते हैं, उन्नतिके कार्य करते हैं तथा भलाई करनेवालोंमें दोष नहीं निकालते हैं।

O descendent of Bharata! The learned occupy themselves with the most desirable of ob-

jectives. They act in pursuit of progress and enrichment [of others]. They do not find a fault with those engaged in good deeds.

हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।

गाङ्गो हृद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते॥ जो अपना आदर होनेपर हर्षके मारे फुल नहीं

कुण्डके समान जिसके चित्तको क्षोभ नहीं होता, वह पण्डित कहलाता है।

उठता, अनादरसे सन्तप्त नहीं होता तथा गंगाजीके

He alone deserves to be called a Pandita who does not feel over-elated when praised. Con-

demnation does not depress him. His mind is like a

large whirlpool in the Ganges, always ebullient.

उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते॥ जो सम्पूर्ण भौतिक पदार्थींकी असलियतका ज्ञान

रखनेवाला. सब कार्योंके करनेका ढंग जाननेवाला तथा मनुष्योंमें सबसे बढ़कर उपायका जानकार है, वही

मनुष्य पण्डित कहलाता है।

A Pandita is aware of the reality of life. He is dexterous in all activity. He can unravel any

knot among human beings. प्रवृत्तवाक्चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।

जिसकी वाणी कहीं रुकती नहीं, जो विचित्र ढंगसे बातचीत करता है, तर्कमें निपुण और प्रतिभाशाली है तथा जो ग्रन्थके तात्पर्यको शीघ्र बता सकता है, वही पण्डित कहलाता है।

We know him as a Pandita who is fluent in speech, whose choice of words is unique, who

argues well, and is intellectually brilliant. A Pandita can elucidate the essence of a literary work with felicity.

असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः॥ जिसकी विद्या बुद्धिका अनुसरण करती है और बुद्धि विद्याका तथा जो शिष्ट पुरुषोंकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता, वही 'पण्डित' की पदवी पा

सकता है। He alone is entitled to be called a Pandita

[विदुरनीति १। २९ — ३४]

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।

आश् ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते॥

whose learning is guided by intellect and whose intellect is moulded by his education. He never transgresses the limits of decency.

संख्या ९]

दिनमें ९। २७ बजेसे।

व्रतोत्सव-पर्व

		7	M / 11 / / 1	4 44
सं० २०७	९, शक	१९४४, सन् २०२	२, सूर्य द	क्षिणायन
तिथि	वाग	ਕ ਾਹਰ	विजांक	

सं० २०७९,	शक	१९४४, सन् २०२२,	, सूर्य द	क्षिणायन
तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	

ा, वर्षा-शरद्ऋतु, आश्विन-कृष्णपक्ष

वतोत्पव-पर्व

प्रतिपदा दिनमें २।१५ बजेतक रिव महालयारम्भ, प्रतिपदाश्राद्ध। द्वितीयाश्राद्ध, भद्रा रात्रिमें १२। ४९ बजेसे, तृतीयाश्राद्ध, मूल १२ "

द्वितीया 🕖 १।९ बजेतक | सोम | उ० भा० 🕖 ९।२७ बजेतक

तृतीया 🔐 १२।३० बजेतक मंगल रेवती 🔐 ९।२५ बजेतक

रवि

सोम

मंगल

बुध

गुरु

शुक्र

वार

सोम

मंगल

बुध

गुरु

शनि

रवि

बुध

गुरु

रवि

हस्त

मूल

पंचमी "१२।४३ बजेतक गुरु

अष्टमी सायं ४।३९ बजेतक

नवमी रात्रिमें ६। ३७ बजेतक

दशमी 🦙 ८।४२ बजेतक

एकादशी 🔑 १० । ४३ बजेतक

द्वादशी 🕠 १२।२९ बजेतक

त्रयोदशी 🕖 १।५६ बजेतक

तिथि

प्रतिपदा रात्रिमें ३।२२ बजेतक

द्वितीया 🦙 २।५० बजेतक

तृतीया 🔑 १ । ४९ बजेतक

चतुर्थी 🥠 १२।२४ बजेतक

षष्ठी 🕠 ८। ३७ बजेतक

सप्तमी रात्रिमें ६। २० बजेतक

दशमी 🕠 ११।९ बजेतक 🛭

एकादशी 🗤 ८।५२ बजेतक

पंचमी 🕠 १०। ३९ बजेतक | शुक्र

अष्टमी दिनमें ३।५९ बजेतक सोम

नवमी 🕠 १।३३ बजेतक 🛱 मंगल

द्वादशी प्रात: " ६ । ४८ बजेतक 🛮 शुक्र

चतुर्दशी रात्रिमें ३।२९ बजेतक शिन

पूर्णिमा 🦙 २।२४ बजेतक

अमावस्या " ३।२३ बजेतक रिव

उ०फा० अहोरात्र

नक्षत्र

उ० फा० प्रात: ७।३ बजेतक

चित्रा 🥠 ७। ३७ बजेतक

स्वाती 🕠 ७।११ बजेतक

विशाखा प्रात: ६। २५ बजेतक

ज्येष्ठा रात्रिमें ३।५५ बजेतक

पू० षा० "१२।४२ बजेतक

उ०षा० // ११।२ बजेतक

श्रवण 🕠 ९।२५ बजेतक

धनिष्ठा 🕠 ७।५९ बजेतक

शतभिषा 🕖 ६ । ४६ बजेतक

पु०भा० सायं ५।५३ बजेतक

उ०भा० <table-cell-rows> ५।१७ बजेतक

🕠 २।२१ बजेतक

🕠 ७। ३४ बजेतक

चतुर्थी *"* १२।२१ बजेतक बिध

अश्विनी 🦙 ९।५२ बजेतक

भरणी 🦙 १०।५१ बजेतक

कृत्तिका 🦙 १२।२३ बजेतक

षष्ठी 😗 १।३७ बजेतक | शुक्र सप्तमी 🥠 २।५६ बजेतक शिनि रोहिणी 🕠 २।१४ बजेतक

मृगशिरा सायं ४।३१ बजेतक

आर्द्रा रात्रिमें ७।२ बजेतक

१८ ,, १९ "

पुनर्वसु 🕠 ९।३९ बजेतक २० ,,

पुष्य ,, १२।१२ बजेतक २१ " आश्लेषा 🕠 २ । ३१ बजेतक २२ ,, मघा रात्रिशेष ४। २९ बजेतक २३ "

चतुर्दशी 🔑 २।५४ बजेतक 🛮 शनि 🗸 पृ०फा० 🕠 ५।५९ बजेतक

२५ ,,

दिनांक

२६ सितम्बर

,,

२७

२८

२९

30 *,,*

१ अक्टूबर

₹ "

२ ,,

४ ,,

4

ξ

9

ረ

,,

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, शरद्ऋतु, आश्विन-शुक्लपक्ष

१३ "

१४ "

१५ ,,

१६ "

१७ ,,

२४ "

का सूर्य रात्रिमें १०।२ बजे, मूल रात्रिशेष ४।२९ बजेतक। भद्रा दिनमें २।२५ बजेतक, **चतुर्दशीश्राद्ध।**

श्राद्ध, महालया समाप्त।

मूल रात्रिशेष ५। १७ बजेसे।

धनुराशि रात्रिमें ३।५५ बजेसे।

श्रीदुर्गाष्ट्रमीव्रत, श्रीदुर्गानवमीव्रत।

भद्रा रात्रिमें १०।० बजेसे।

प्रदोषव्रत।

रात्रिमें ६।२१ बजेसे रात्रिशेष ५।१० बजेतक।

मकरराशि प्रातः ६।१८ बजेसे, विजयादशमी।

दिनमें ८।४३ बजे, **पापांकुशा एकादशीव्रत** (सबका)।

भद्रा रात्रिमें ३। २९ बजेसे, मीनराशि दिनमें १२। ६ बजेसे।

मातृनवमी, नवमीश्राद्ध। **भद्रा** प्रात:७।४० बजेसे रात्रिमें ८।४२ बजेतक, **दशमीश्राद्ध।** इन्दिरा एकादशीवृत (सबका), एकादशीश्राद्ध, मूल रात्रिमें १२।१२ बजेसे। द्वादशीश्राद्ध, सिंहराशि रात्रिमें २।३१ बजेसे। भद्रा रात्रिमें १।५६ बजेसे, प्रदोषव्रत, त्रयोदशीश्राद्ध, सायन तुलाराशि

कन्याराशि दिनमें १२।१६ बजेसे, अमावस्या, पितृविसर्जन, अमावस्या

मिथुनराशि रात्रिमें ३। २२ बजेसे, सप्तमीश्राद्ध, कन्यासंक्रान्ति रात्रिमें १०। ४८ बजे, विश्वकर्मापूजा, शरद्ऋतु प्रारम्भ। जीवत्पुत्रिकाव्रत, अष्टमीश्राद्ध।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

तुलाराशि रात्रिमें ७। ३६ बजेसे, **हस्त नक्षत्रका सूर्य** रात्रिमें ३।५९ बजे।

भद्रा दिनमें १। ७ बजेसे रात्रिमें १२। २४ बजेतक, वृश्चिकराशि

मूल रात्रिमें २।२१ बजेतक, महानिशा पूजा, महात्मागाँधी-जयन्ती, भद्रा

भद्रा दिनमें ८।५२ बजेतक, कुम्भराशि दिनमें ८।४३ बजेसे, पंचकारम्भ

भद्रा दिनमें २।५७ बजेतक, शरद्पूर्णिमा, महर्षि वाल्मीकिजयन्ती, कार्तिक स्नानारम्भ।

शारदीय नवरात्रारम्भ, मातामह श्राद्ध, अग्रसेन-जयन्ती।

रात्रिमें १२। २६ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।

रात्रिमें ८।६ बजे, पंचक समाप्त दिनमें ९।२५ बजे, चतुर्थीश्राद्ध। पंचमीश्राद्ध, उ०फा० का सुर्य दिनमें १२।३२ बजे, मुल दिनमें ९।५२ बजेतक। वृषराशि सायं ५। १४ बजे, षष्ठीश्राद्ध। भद्रा दिनमें १। ३७ बजेसे रात्रिमें २। १६ बजेतक।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें १२। ३० बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय

न्मानविधांsmउठोंडेcoक्टSerद्द्वन निक्रेह्मा प्रेतिकृत्राण्येsखब्रुवा श्वेharma | MADE WITH LOVE BY अर्थानक्ष्याण्डीन

बड़ी ही कृतज्ञतासे यह बात कहना चाहता तो मैंने सोचा आप किसी कामसे अन्दर होंगे,

हूँ कि अगर आप भगवान्का नाम लेते हैं, तो इसलिये फोन किया।' यह बात सुनकर मानो मुझे भगवान् हमेशा आपकी रक्षा करते हैं। इसमें कोई साँप सूँघ गया हो। मैंने पत्नीसे यह बात कही तो

संदेह नहीं। बात पिछले सालकी है, जब देशमें कोरोनाकी

महामारीका संकट छाया हुआ था और सब जगह

लॉकडाउन चल रहा था। हमारे यहाँ कोल्हापुरमें अत्यावश्यक सेवाओंको छोड़कर

व्यापार बन्द था। हमारी कपड़ेकी दुकान है, इसलिये

हमको भी दुकान खोलनेकी अनुमति नहीं दी गयी थी। अत: तीन महीने हम घरपर ही बैठे

रहते, घरके काममें हाथ बँटाते और थोड़ी पूजा-पाठ करते थे। उसी दौरान मेरी पत्नीने श्रीरामचरित-मानसका (मासपारायण)-का पाठ करना शुरू

किया था। एक दिन मुझे मेरे फेमिली डॉक्टर साहबका

फोन आया कि शौनक! मुझे मेरे मापका कुर्ता-पाजामा चाहिये तो क्या आप दुकान खोलकर मुझे ला देंगे? सो मैंने कहा जरूर डॉक्टर साहब! कल बाहर जाऊँगा तो आपके लिये दुकान खोलकर

कुर्ता-पाजामा ले आऊँगा। दूसरे दिन सुबह घरके लिये कुछ सब्जी लेनेके

लिये बाहर निकला और सब सामान लेकर दूकान आया। दुकान खोलकर डॉक्टर साहबके साइजका

कुर्ता-पाजामा लिया और दुकान बन्द करके डॉक्टर साहबको कपडे देनेके बाद घर वापस आ गया। तीन

दिन बाद सुबहके ८ बजे मेरे मोबाइलपर मेरे एक ग्राहकका फोन आया कि 'भाईसाहब! मुझे कुछ कपडे खरीदने हैं। आप दुकानके अन्दर हो क्या?' मैंने कहा—'नहीं श्रीमान्! मैं घरपर हूँ और दूकान तो

वह मुझे धीरज देते हुए बोली—'हमारे रामजी हैं ना, फिर क्यों चिन्ता करते हो।' मैंने स्कूटर चालू किया और हनुमान्जीका स्मरण

िभाग ९६

करते हुए दुकानकी ओर गया। वहाँ पहुँचा तो देखा कि द्कानका शटर नीचे था, पर ताले सब खुले थे।

फिर याद आया कि तीन दिन पहले जब दुकानमें कपड़े लेने आया था, तो हडबडीमें सिर्फ शटर नीचे करके ताला लगाना मैं ही भूल गया था।

दुकान खोलनेकी हिम्मत नहीं हो रही थी, फिर भी श्रीरामजीका नाम लेकर जैसे ही मैंने शटर ऊपर किया तो अचिम्भित हो गया, दुकानमें एक भी चीज इधर-की-उधर नहीं हुई थी। हम कैश बॉक्सको लॉक नहीं लगाते, उसे खोलकर देखा तो

एक भी रुपया नहीं गया था। यह देख मेरी आँखोंमें

आँसू आ गये और प्रभूसे कहने लगा, 'आपका

लाख-लाख धन्यवाद है।' आजके जमानेमें जहाँ चोर बन्द दुकानोंमें भी शटर तोडकर चोरी कर लेते हैं, वहाँ आपने इतने दिनतक मेरी दूकानकी रक्षा की और मुझपर आँच भी नहीं आने दी। घर आकर मैंने पत्नीसे यह बात कही तो

उसने मुझसे यही कहा-'यह सब चमत्कार श्रीराम-चरितमानसका है' और एक भजनकी पंक्तियाँ सुनायीं, जो इस प्रकार हैं-हमारे साथ श्री रघुनाथ तो किस बात की चिन्ता।

किया करते हो तम दिन रात क्यों बिन बात की चिन्ता? तेरे स्वामी को रहती है तेरे हर बात की चिन्ता॥

शरण में रख दिया जब माथ, तो किस बात की चिन्ता?

पढो, समझो और करो संख्या ९] पढ़ो, समझो और करो (१) उन्होंने अस्वीकार कर दिया और अन्तमें डाक-तार विभागकी अर्थशुचिताका अनुकरणीय उदाहरण पत्रिकामें उनका चित्र एवं विवरण ससम्मान छपा। अर्थशुचिता राँचीके एक पोस्टमास्टर श्रीचौधरी कुछ वर्ष पूर्व एक महान् सद्गुण है, जिसके बिना व्यक्ति बेईमान हो प्रधान डाकघरमें प्रधान लेखालिपिक थे। स्टेट बैंकसे १०००० जाता है। परिवारोंमें कलह प्रारम्भ हो जाती है। संस्थाएँ (दस हजार) रुपया मँगवाया गया। किंतु वहाँके खजांचीने उजड़ जाती हैं और बड़े-बड़े राज्यों एवं साम्राज्योंके भवन चेकपर १००००० (एक लाख) रुपया समझकर उतनी खोखले होकर धराशायी हो जाते हैं।—हरबंशलाल ओबराय राशि दे दी। संध्याको रोकड् मिलाते समय श्रीचौधरीने (२) प्रधान डाकघरके डाकपालको बताया कि मेरी नगदी रोकडमें चमत्कार नहीं, संतक्षपा ही श्रेयस्कर नब्बे हजार रुपया अधिक है। डाकपाल श्रीमुखर्जीने इसपर घटना मुझसे व्यक्तिगत रूपसे सम्बन्धित है, जो सन् विश्वास नहीं किया। श्रीचौधरी अपने रोकड्में ९० हजार १९८६ से अक्टूबर १९८९ के कालखण्डकी है। इस अवधिमें अधिक दिखाकर हस्ताक्षर करके घर चले गये। आधी मेरी नियुक्ति दूसरी बार पुलिस अधीक्षक जनपद प्रभारीके पदपर देवरियामें हुई थी। इस कालखण्डमें अपने पूज्य रातको श्रीमुखर्जीने हिन्दपीढ़ी स्थित श्रीचौधरीके घर पहुँचकर उन्हें जगाकर कहा कि 'नब्बे हजार वास्तवमें अधिक आ गुरुदेव सन्त श्रीदेवराहा बाबाके आश्रम जानेका अवसर गया है। आओ, हम दोनों मिलकर आधा-आधा बाँट हम पति-पत्नी महीनेमें कम-से-कम चार-पाँच बार निकाल लेते थे। इसी कालखण्डमें कसियामें एक चमत्कारी तांत्रिकका लें।' श्रीचौधरीने प्रात:काल बात करनेका बहानाकर उस आना हुआ। उसके चमत्कार अविश्वसनीय थे। वह जहाँ बातचीतको टाल दिया और दूसरे दिन दफ्तर पहुँचनेसे पहले ही स्टेट बैंक फोन कर दिया कि उनके यहाँसे भूलसे चाहता, वहीं फल-फूल, मिठाईके साथ लाखों रुपयोंके नब्बे हजार रु० अधिक आ गया है। स्टेट बैंकवाले पहलेसे नोटतक मँगा देता था। मुझसे सम्पर्कके कुछ दिनों बाद ही ही चिंतित थे। उन्होंने कहा कि उन्होंने पाँच-छ: बार वह मेरे परिवारके सदस्यके समान हो गया था। उसके डाकपालको फोनकर पूछा था और हर बार यही उत्तर चमत्कारोंका प्रत्यक्ष दर्शन करनेके लिये जनपदके दिया गया कि उनके पास एक पाई भी अधिक नहीं आयी। जिलाधिकारी, जिलान्यायाधीश, मुख्य चिकित्साधिकारीतक सपरिवार मेरे यहाँ आने लगे थे। वह स्वयंको माँ दुर्गाका इसपर श्रीचौधरीने कहा कि लेखापाल मैं हूँ, वे नहीं। अत: जो मैं कहता हूँ वही ठीक है। आपके नब्बे हजार भक्त बताया करता था। मेरे अनुरोधपर वह अपनी कुछ रुपये जो भूलसे अधिक आ गये हैं, वापस ले जायँ। सिद्धियोंको मुझको देनेको तैयार भी हो गया था। यद्यपि जीपसे स्टेट बैंकके अफसरोंके आनेपर उन्हें नब्बे हजार उसके बहकावेमें आ उसका शिष्य बननेसे मैं बार-बार लौटा दिया गया। इसे अपनी झुठी प्रतिष्ठा क्षति मानकर बचा रहा, वह भी परम पूज्य गुरुदेव देवराहा बाबाकी श्रीमुखर्जीने श्रीचौधरीपर अनुशासनहीनताके झूठे आरोप मुझपर असीम कृपाके कारण। लगाकर उन्हें निलम्बित करवा दिया। श्रीचौधरीने पटनास्थित एक दिन गुरुदेवकी प्रेरणासे मैं प्रात: लगभग ९ बजे राज्यके सबसे बड़े अधिकारीको पत्र लिखकर राँची बुलवाया ही सपत्नीक गुरुदेवके आश्रम जा पहुँचा। हमें देखते ही श्रद्धेय गुरुदेवने मेरी पत्नीको सम्बोधित करते हुए कहा— और सारी स्थिति साफ-साफ बतायी। इससे श्रीमुखर्जीको डाक विभागसे तुरंत कार्यमुक्त कर दिया गया। श्रीचौधरीको 'माई! मेरा अजीत बच्चा आजकल एक मदारीके चक्करमें ३० हजार रु० पुरस्कार देनेका प्रयास किया गया, जो पड गया है ?' पत्नी अबतक मुझको देख ही रही थी कि

[भाग ९६ ************************ बाबाने हँसते हुए पुन: कहा—'अब तुम घबरा मत माई! वापस लौटते समय मार्गमें किसी सुरक्षित एकान्त स्थानपर मेरा बच्चा सामने आया है। अब सब ठीक हो जायगा।' गाड़ी रोकवाकर इसी कुल्हड़में पेशाबकर दूरसे जलती माचिसकी तीली उस कुल्हड़में फेंकना। सावधान! बहुत उसके बाद बाबाने तांत्रिकका उल्लेख करते हुए कहा कि 'वह मदारी अपनेको माता दुर्गाका साधक होनेकी निकट मत जाना। तुम और माई अपने चालक और बकवास करता है। जिस आदिशक्ति माताके समक्ष सृष्टिके सुरक्षाकर्मीको भी थोड़ी दूर खड़ा कर सकते हो। फिर सारे देवतागण, ऋषि-महर्षि उसकी कृपाका अंशमात्र पानेको देखना पेशाबसे आगकी कितनी तेज लपटें निकलती हैं।' नतमस्तक रहते हैं। वह पापी उनको वशमें कर लेनेका वापसीमें मुझको ही नहीं वरन् मेरी धर्मपत्नी, मेरे दम्भ भरता है। उसको मेरे सामने लाओ और वह मिठाईका गनर एवं मेरे चालक सभीके मनमें परीक्षणकी तीव्र उत्कण्ठा छोटा-सा टुकडातक मँगाकर दिखा दे? उसको भूत-थी। न जाने क्यों और कैसे मुत्रत्यागकी इच्छा भी बलवती पिशाचकी अधम सिद्धि है। जिसके बलपर चमत्कार हो उठी थी। वापसीमें मैंने सलेमपुर-बरहज रेलमार्गको प्रदर्शितकर वह लोगोंको मूर्ख बनाता है। यदि उसमें इतना पार करते ही आमके बागके किनारे अपनी कार रोकवा ही सामर्थ्य है तो क्यों नहीं रातों-रात किसी नदीपर पुल दी। सभी लोग कारसे उतर पड़े। सुनसान स्थानपर हमलोगोंके बना भूखे-प्यासे लोगोंके लिये भारी मात्रामें खाने-पीनेकी अतिरिक्त कोई नहीं था। थोड़ा अलग हटकर मैंने कुल्हड़में व्यवस्थाकर लोगोंको जीवनदान देता ? मैं देख रहा हूँ उस मूत्रत्याग किया और गनरसे माचिस माँगी। तीनों लोग मदारीका बहुत-ही दु:खद अन्त होगा। मैं फिर कहता हूँ कुल्हड्से थोड़ी दूरीपर खड़े हो गये। डरते-डरते कुल्हड्के कि तुम उसको मेरे पास ले आओ और रुपया-पैसाकी तो निकट जाकर जलती माचिसकी तीली उसमें फेंक मैं पीछे बात ही दूसरी है, एक फल या मिठाईका टुकड़ा ही मँगाकर हट गया। यह क्या जलती तिल्लीके कुल्हडमें पडते ही सहसा आगको तीव्र लपट निकली। धड़ामकी ध्वनि करता दिखलाओ।' गुरुदेवकी प्रेमपूर्ण फटकारसे मैं रो पड़ा तथा अपनी कुल्हड़ कई टुकड़ोंमें विभक्त हो गया। आस-पासके आमके भूलके लिये बारम्बार क्षमा–याचना करने लगा। परम कुपालू सूखे पत्ते जल उठे। आश्चर्यचिकत हम सभी बाबाका बाबा ठठाकर हँस पड़े और मुझसे पूछ बैठे—'तुमने किसी मार्गभर गुणगान करते वापस लौटे। इंसानके पेशाबसे चिराग जलनेकी बात सुनी है?' मैंने दूसरे दिन मैंने मध्याह्नमें थानाध्यक्ष कसियाको कहा—'बाबा! यह तो एक मुहावरेका अंशभर है।''यदि फोनकर उस तान्त्रिकको अपने राजकीय आवासपर यह मुहावरा तुमपर सत्य सिद्ध हो जाय तो?' बाबाका बुलवाया। मेरे तथा धर्मपत्नीके बारम्बार अनुरोधपर भी कथन सुन मैं चौक उठा था। 'सुनो अजित बच्चा! जब तांत्रिक महाराज बाबाके आश्रम जानेको सहमत चमत्कारका प्रदर्शन योगियों और सिद्धोंके लिये वर्जित है, नहीं हुए, तो मेरे बार-बार दबाव देनेपर वे अन्तत: यह किंतु उस मदारीके भ्रमजालसे तुमको निकालनेके लिये रहस्य खोलनेको सहमत हुए कि उन्होंने प्रेत एवं यह आवश्यक है कि तुम स्वयं ही किसी चमत्कारके जिन्नातको सिद्ध कर रखा है, जो परम वैष्णव सिद्ध साक्षी बनो।' सन्त बाबाके मेरे निकट पहुँचते ही मुझको छोड़कर यह कहकर गुरुदेवने मुझको निकट बुलाकर मेरे पलायन कर जायँगे और मेरा अहित कर बैठेंगे। सिरपर अपना पाँव रख दिया। सहसा मुझको एक झटका-पूज्य देवराहा बाबाने कहा था कि उस मदारीके सा लगा और फिर स्थिति सामान्य हो गयी। बाबाने आश्रम-पास अधम सिद्धियाँ हैं और वह उन्हींका प्रयोग करता परिसरमें ही एक कोनेमें रखे मिट्टीके कुल्हड़ोंके ढेरसे है, उसका अन्त बड़ा ही दु:खद होगा, कहनेकी एक कुल्हड़ उठा लेनेको कहा तथा आदेश दिया कि आवश्यकता नहीं कि बाबाका कथन सत्य हुआ और

पढ़ो, समझो और करो संख्या ९] उसकी बड़ी ही दु:खद एवं कष्टमय मृत्यु हुई। २०वें दिन संयोगसे उसी समय रानीगंजके बहुत श्रीभगवान्ने गीतामें कहा है-प्रतिष्ठित सामाजिक नेता श्री गोविन्दराम खेतान अकस्मात् मन्दिर पहुँच गये। यह दृश्य देखकर वे अवाक् रह यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः। प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥ गये। उन्होंने पुजारीजीसे पूछा—'पुजारीजी! यह क्या तमाशा है! विश्वनाथ पाठ कर रहा है और बिल्ली प्रसिद्ध है कि 'जैसा इष्ट वैसी गति' देवोंको पूजने-वाले देवगतिको, यक्ष-राक्षसोंको पूजनेवाले यक्ष-राक्षसोंकी ध्यान लगाकर सुन रही है। इसमें अवश्य कोई रहस्य गतिको और भूत-प्रेतोंको पूजनेवाले उन्हींके जैसे रूप, है। इसकी पूरी छान-बीन होनी चाहिये। शोध होना गुण और स्थिति आदिको पाते हैं।—डॉ० अजितकुमार सिंह चाहिये।' वे अपनी धुनमें बोलकर चले गये। हमलोग सब मुसकराकर रह गये। (3) बिल्लीका प्रायश्चित्त २०वें दिन मैं अपने नियमित कार्यक्रमके अनुसार पश्चिम बंगालमें बर्दवान (पश्चिम) जिलेमें रानीगंज प्रात: ४ बजे वहीं मन्दिरमें आसन बिछाकर बैठ एक बहुत पुराना भारतीय धर्म और संस्कृतिसे जुड़ा तथा गया। ४-५ मिनट ध्यान लगाकर बैठा रहा। परंतु औद्योगिक और व्यवसायिक उन्नतिके साथ कदम-से-जो बिल्ली बिना नागा किये २० दिनोंतक लगातार आकर पाठ सुनती रही, वह आज दिखी नहीं। मैंने कदम बढ़ानेवाला जागरूक शहर रहा है। महात्मा गाँधी रोड और जवाहरलाल नेहरू रोड यहाँके व्यस्ततम पुजारीजीसे जिज्ञासा की। उनके यह कहनेपर कि व्यावसायिक केन्द्र हैं। इनको मिलानेवाली हनुमान कल शाम बिल्लीकी मौत हो गयी। मृत्यु किसी गलीमें लगभग १५० वर्षोंसे प्रख्यात जाग्रत् हनुमान दुर्घटनामें नहीं हुई थी बल्कि स्वाभाविक ढंगसे ही मन्दिर है। शनिवार और मंगलवारको तो सुबहसे ही हुई थी, परंतु थी यह एक आकस्मिक घटना। इसने मुझे अन्दरतक झकझोर दिया। मुझे जैसे धक्का-सा हनुमान-चालीसा और सुन्दरकाण्डका पाठ करने और प्रसाद चढ़ानेवालोंका ताँता लगा रहता है। लगा और उस सात्त्विक प्राणीके लिये मेरी आँखें नम हो गयीं। मैं गम्भीर चिन्तनमें पड़ गया। क्या जून २००० ई०की बात है। मैं गम्भीर रूपसे अस्वस्थ हो गया था। चिकित्साके लिये रानीगंजसे बाहर गोविन्दरामजीकी बात सही है। या फिर बिल्ली किसी जानेके पहले मैंने हनुमानजीके मन्दिरमें खड़े होकर व्रत प्रायश्चित्तके अन्तर्गत इस कार्यक्रममें सम्मिलित थी। लिया था कि बाहरसे आनेके बाद मैं प्रतिदिन प्रात: ४ हो सकता है कि ८४ लाख योनियोंमें भटकावका चक्र कुछ ऐसे ही चलता हो। किंकर्तव्यविमृद्की बजे मन्दिरमें बैठकर लगभग एक घण्टेतक हनुमान-चालीसा, विष्णुसहस्रनाम आदि ग्रन्थोंका पाठ करूँगा। स्थितिमें हो जानेके कारण मेरे मस्तिष्कमें उठते-बैठते १० जून २००७ से प्रात: ४ बजे मैं हनुमान्जीके यही प्रश्न गूँजता था कि उस बिल्लीकी अचानक दरबारमें एक खम्भेकी बगलमें उनकी शरणमें आसन मृत्यु क्यों हुई? अन्तमें उसका यही निष्कर्ष निकलता लगाकर बैठ गया और पाठ शुरू करनेकी तैयारी करने है कि पूर्वजन्ममें वह कोई पुण्यात्मा थी, कोई छोटा-लगा। उसी समय एक बिल्ली आकर मुझसे एक हाथ सा प्रारब्ध शेष रह जानेके कारण उसे यह योनि दूरीपर मेरी बगलमें बैठ गयी और दत्त-चित्त होकर पाठ मिली और पूर्वजन्मके संस्कारवश वह इस समय भी सुनने लगी। जरा भी टस-से-मस नहीं हुई। पाठ समाप्त सात्त्विक बनी रही और बीस दिनतक लगातार पाठ होनेके पश्चात् पुजारीजी एक कटोरीमें दूध लाकर उसे सुननेपर उसका प्रारब्ध पूरा हो गया और उसे सद्गति पिला देते। यह क्रम १९ दिनोंतक निर्विघ्न चलता रहा। प्राप्त हो गयी। - विश्वनाथ सराफ

मनन करने योग्य

पितर श्राद्ध ग्रहण करते हैं

पद्मपुराणमें आया है कि प्राचीन कालमें भगवान् १२:२४ तकका समय) आयी, उसी समय ऋषिगण

उपस्थित हो गये। मुनियोंको आया देख सीतामाता वहाँसे

श्रीराम जब भगवती सीता तथा लक्ष्मणके साथ चित्रकूटसे

चलकर महर्षि अत्रिके आश्रमपर पहुँचे, तब उन्होंने मुनिश्रेष्ठ

अत्रिसे पूछा—'महामुने! इस पृथ्वीपर कौन-कौनसे पुण्यमय तीर्थ हैं, जहाँ जाकर मनुष्यको अपने बन्धुओंके वियोगका

दु:ख नहीं उठाना पड़ता? और वहाँका श्राद्धादि कर्म

पितरोंकी सद्गतिमें हेतु बनता है। भगवन्! यदि कोई ऐसा स्थान हो तो कृपा करके वह मुझे बताइये।'

मुनिवर अत्रि बोले—वत्स राम! आपने बडा उत्तम

प्रश्न किया है, मेरे पिता ब्रह्माजीद्वारा निर्मित एक उत्तम तीर्थ है, जो पुष्करके नामसे विख्यात है, वहाँ जाकर आप

अपने पितरों—दशरथ आदिको श्राद्धादि पिण्डदानसे तृप्त करें, वहाँ पिण्डदान करनेसे पितरोंकी मुक्ति हो जाती है। यह सुनकर रामजी बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने पुष्कर

जानेका मन बनाया। वे ऋक्षवान् पर्वत्, विदिशा नगरी तथा चर्मण्वतीको पारकर यज्ञपर्वत गये। वहाँसे मध्यम

पुष्कर गये। वहाँ स्नान करके उन्होंने देवताओं तथा पितरोंका तर्पण किया। उसी समय मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी

अपने शिष्योंके साथ वहाँ आये। भगवान्ने महामुनिको

प्रणाम किया और कहा—मुने! मैं महर्षि अत्रिकी

आज्ञासे यहाँ अवियोगा तीर्थमें पितरोंका श्राद्ध करने

उपस्थित हुआ हूँ। मार्कण्डेयजीने कहा—रघुनन्दन! आप बड़ा ही पुण्यकार्य करने जा रहे हैं। आप यहाँ

राजा दशरथका श्राद्ध कीजिये। हम सभी विप्रगण श्राद्धमें उपस्थित रहेंगे। श्रीरघुनाथजीसे ऐसा कहकर वे सभी ऋषि

स्नानके लिये चले गये। इधर श्रीरामजीने लक्ष्मणजीको श्राद्धकी सामग्री एकत्रित करनेके लिये कहा। श्रीलक्ष्मणजी

जंगलसे अच्छे-अच्छे फलोंको ले आये। श्रीजानकीजीने

भोजन बनाया। श्रीरामजी अवियोगा नामकी बावलीमें स्नानकर मुनियोंके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

हट गयीं और झाडियोंके पीछे हो गयीं। श्रीरामचन्द्रजी

देखकर तुम छिप क्यों गयी?' सीताजी बोलीं—नाथ! मैंने जो आश्चर्य देखा, उसे बताती हूँ, सुनिये। आपके द्वारा नाम-गोत्रका उच्चारण

विधिपूर्वक श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन कराने लगे।

श्राद्धकी प्रक्रिया पूर्ण करके ब्राह्मणोंके विसर्जनके अनन्तर

श्रीरामजीने देवी सीतासे पूछा—'प्रिये! यहाँ आये मुनियोंको

होते ही स्वर्गीय महाराज यहाँ आकर उपस्थित हो गये। उनके साथ उन्हींके समान रूप-रेखावाले दो पुरुष और

आये थे, जो सब प्रकारके आभूषण धारण किये हुए थे। वे तीनों ही ब्राह्मणोंके शरीरसे सटे हुए थे। प्रभो! ब्राह्मणोंके

अंगोंमें मुझे पितरोंके दर्शन हुए। उन्हें देखकर मैं लज्जाके मारे आपके पाससे हट गयी। इसीलिये आपने अकेले ही

ब्राह्मणोंको भोजन कराया और विधिपूर्वक श्राद्धकी क्रिया भी सम्पन्न की। भला! मैं स्वर्गीय महाराजके सामने कैसे खडी होती! यह मैंने आपसे सच्ची बात बतायी है। यह

दुपहरीमें जब कृतप वेला (दिनमें११:३६ से सुनकर श्रीरामजी तथा लक्ष्मणजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

गीताप्रेसके कुछ विशिष्ट प्रकाशन







मानस-पीयूष (कोड 86) सात खण्डोंमें—इसमें महात्मा श्रीअञ्जनीनन्दनशरणजीके द्वारा सम्पादित श्रीरामचिरतमानसकी सबसे बृहत् टीका,ख्यातिलब्ध रामायणियों, उत्कृष्ट विचारकों, तपोनिष्ठ महात्माओं एवं आधुनिक मानसिवज्ञोंकी एक साथ व्याख्याओंका अनुपम संग्रह किया गया है। सम्पूर्ण सेटका मूल्य ₹ 2800 एवं प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹ 400

महाभारत—सटीक (कोड 728) छः खण्डोंमें—यह भारतीय संस्कृति और आर्य सनातन धर्म-दर्शनका विश्वकोष, उपनिषदोंके सार, इतिहास, पुराणोंके उन्मेष-निमेष, आश्रम, वर्ण-धर्म, पुराणोंका आशय, भिक्त-तत्त्वज्ञानका प्रकाशक तथा भगवान् श्रीकृष्णके चिरत्रका विश्लेषण करनेवाला अद्भुत ग्रन्थरत्न है। सम्पूर्ण सेटका मूल्य ₹ 2700 एवं प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹ 450, (कोड 2141 से 2147) तेलुगु भाषामें भी सात खण्डोंमें उपलब्ध। सम्पूर्ण सेटका मूल्य ₹ 400

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् (कोड 2156 से 2160) पाँच खण्डोंमें — प्रस्तुत ग्रन्थमें महर्षि वेदव्यास प्रणीत श्रीमद्भागवतमहापुराणका मूल संस्कृत और इसपर प्रसिद्ध श्रीधरीटीका संस्कृतमें और श्रीधरीटीकाका अनुवाद गुजराती भाषामें किया गया है। पहली बार गुजराती भाषामें श्रीधरीटीकाका सुन्दर, सुबोध, सरल एवं सरस अनुवाद प्रकाशित किया गया है। सम्पूर्ण सेटका मूल्य ₹ 1750 एवं प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹ 350

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

श्रीमद्भगवद्गीता [सानुवाद श्रीधरस्वामिकृत व्याख्यासिहत] (कोड 2297)—प्रस्तुत पुस्तकमें स्वामी श्रीधराचार्यद्वारा रचित भाष्यको सानुवाद प्रकाशित किया गया है। अन्यान्य सुविस्तृत भाष्योंके होते हुए भी श्रीधरी टीकाकी अपनी एक मुख्य विशेषता है। इसमें सरल भाषाद्वारा संक्षेपमें गीताके मर्मको खोलनेकी सफल चेष्टा की गयी है। मूल्य ₹ 100

गीता-तत्त्व-विवेचनी (कोड 2298) [असमिया]—प्रस्तुत पुस्तक परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा प्रणीत गीताकी एक दिव्य टीका है। इसमें 2515 प्रश्न और उनके उत्तरके रूपमें प्रश्नोत्तर शैलीमें गीताके श्लोकोंकी विस्तृत व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹ 200

व्यवहार-दर्शन-पीयूष (कोड 2299)—प्रस्तुत पुस्तकमें श्रद्धेय ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर चैतन्यजी महाराजके द्वारा समय-समयपर दिये गये पावन उपदेशोंका संकलन किया गया है। इसमें मायामय संसारके नानाविध जंजालोंमें उलझकर अथवा अपनी विभिन्न एषणाओंके कारण प्रपंचोंमें फँसकर अपने मुख्य लक्ष्यसे भटके हुए मनुष्योंको सही जीवन जीनेकी कलाका बहुत ही सुन्दर, सरस विवेचन किया गया है। मूल्य ₹ 20

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 2300) [नेपाली] ग्रन्थाकार—प्रस्तुत पुस्तकमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। ₹ 160

काशी-दर्शन (कोड 2301)—इस पुस्तकमें काशीका सिचत्र इतिहास, भौगोलिक स्थिति, पौराणिक आख्यान, सांस्कृतिक विवरण, पर्वोत्सव, यातायात एवं ठहरनेके स्थान इत्यादिका सारगिभत परिचय तथा स्तोत्र एवं स्तुतियोंका संकलन किया गया है। प्रेमी पाठकों, विद्वानों, पर्यटकों एवं तीर्थयात्रियोंके लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। मूल्य ₹ 50



LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

श्रीमद्भागवतमहापुराण—अब उपलब्ध





श्रीमद्भागवतमहापुराण — बेडिया, सटीक, सजिल्द, मोटा टाइप — श्रीमद्भागवत— महापुराण सटीकको पत्राकारकी तरह बेडिया ग्रन्थाकार, मोटा टाइपमें प्रकाशित किया गया है, जिससे भागवतका पाठ करनेवालोंको सुविधा

होगी एवं व्यास–पीठपर भी इसको प्रतिस्थापित किया जा सकता है।(कोड 1951–1952) दो खण्डोंमें सेट। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹ 1200, डाकखर्च ₹ 180 अतिरिक्त।

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।) व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रचारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् 2023) अब उपलब्ध-मँगवानेमें शीघ्रता करें।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 2278)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद मूल्य ₹ 125

पॉकेट साइज— सजिल्द (कोड 2279)— गीता-मूल श्लोक

मूल्य ₹ 50

आवश्यक सूचना

- 1. आजकल ई-कामर्स कम्पनियोंके प्लेटफार्मपर गीताप्रेसकी पुस्तकें बहुत अधिक मूल्यपर, यहाँतक कि छपे मूल्यसे कई गुना अधिक मूल्यपर उपलब्ध हैं। अतः Online गीताप्रेसकी पुस्तकें गीताप्रेसकी अधिकृत website से ही मँगवानी चाहिये। अधिकृत Website:gitapress.org / gitapressbookshop.in
- 2. गीताभवन, स्वर्गाश्रममें शारदीय-नवरात्रमें 26 सितम्बरसे 4 अक्टूबरतक श्रीरामचरितमानसका नवाह्न पाठ आयोजित है।
- 3. गीताभवन, स्वर्गाश्रममें Online रुपये जमा करके कमरोंको बुक करानेकी सुविधा नहीं है। कृपया सावधान रहें। कमरा बुक करानेके लिये Online रुपये किसी खातेमें न भेजें।

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें। gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें। कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005 book.gitapress.org/gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)